हकायके हिंदी

लेखक

मीर अब्दुल अब्बास रिजवी

अनुवादक

सैयद अतहर अब्बास रिजवी

नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

मूल्य ५०)

राजा बलदेवदास बिड़ला ग्रंथमाला–३
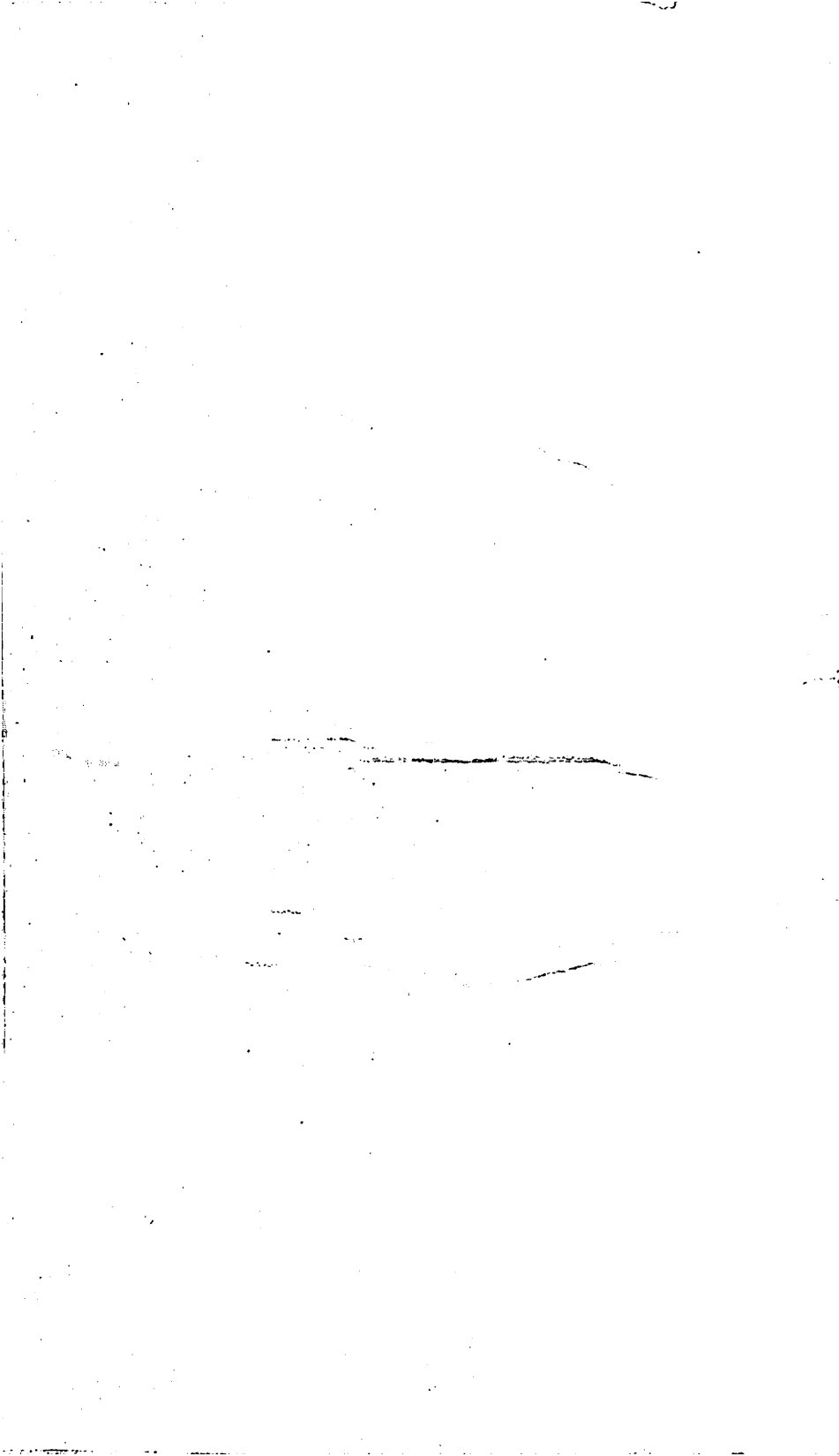
हकायके हिंदी

लेखक

मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी

(१५६६ ई०)

अनुवादक

सैयिद अतहर अब्बास रिज़वी

एम० ए०, पी–एच० डी०

यू० पी० एजूकेशनल सर्विस

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक : महताबराय, नागरी मुद्रण, काशी
प्रथम संस्करण, १००० प्रतियाँ, सं० २०१४
मूल्य ३)

उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्य मंत्री

श्रद्धेय डॉ० संपूर्णानंद जी के

चरणों में

सादर समर्पित
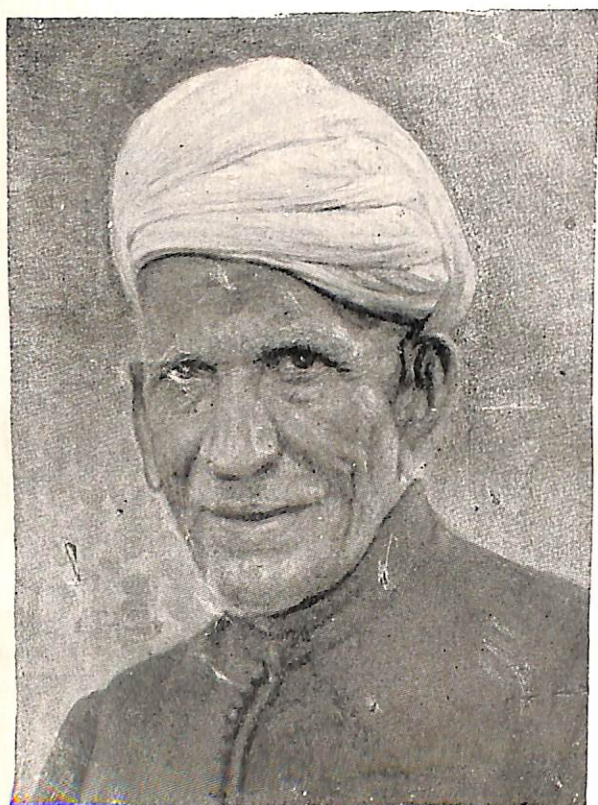
राजा बलदेवदास बिड़ला

राजा बलदेवदास बिड़ला-ग्रंथमाला

प्रस्तुत ग्रंथमाला के प्रकाशन का एक संक्षिप्त-सा इतिहास है। उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जब काशी नागरीप्रचारिणी सभा में पधारे थे तो यहाँ के सुरक्षित हस्तलिखित ग्रंथों को देखकर उन्होंने सलाह दी थी कि एक ऐसी ग्रंथमाला निकाली जाय जिसमें सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ मुद्रित कर दिए जायँ। बहुत अधिक परिश्रमपूर्वक संपादित ग्रंथ छापने के लोभ में पड़कर अनेकानेक महत्वपूर्ण ग्रंथों को अमुद्रित रहने देना उनके मत से बहुत बुद्धिमानी का काम नहीं है। उन्होंने सलाह दी कि ये पुस्तकें पहले मुद्रित हो जायँ फिर विद्वानों को उनकी सामग्री के विषय में विचारने का अवसर मिलेगा। सभा के कार्यकर्ताओं को राज्यपाल महोदय की यह सलाह पसंद आई। हीरक जयंती के अवसर पर सभा ने जिन कई महत्वपूर्ण कार्यों की योजना बनाई उनमें एक ऐसी ग्रंथमाला का प्रकाशन भी था। सभा का प्रतिनिधि मंडल जब इन योजनाओं के लिये धन संग्रह करने के उद्देश्य से दिल्ली गया तो सुप्रसिद्ध दानवीर सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला से मिला और उनके सामने इन योजनाओं को रखा। बिड़ला जी ने सहर्ष इस प्रकार की ग्रथमाला के लिये २५०००) रु० की सहायता देना स्वीकार कर लिया। इस कार्य के महत्व का उन्होंने तुरंत अनुभव कर लिया और सभा के प्रतिनिधिमंडल को इस विषय में कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं हुई। बिड़ला परिवार की उदारता से आज भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा परिचित है। इस परिवार ने भारतवर्ष के सांस्कृतिक, उत्थान के लिये अनेक महत्वपूर्ण दान दिए हैं। सभा को इस प्रकार की ग्रंथमाला के लिये प्रदत्त दान भी उन्हीं महत्त्वपूर्ण दानों की कोटि में आएगा। सभा ने निर्णय किया कि इन रुपयों से प्रकाशित होनेवाली ग्रंथमाला का नाम श्रीघनश्यामदास जी बिड़ला के पूज्य पिता राजा बलदेवदास जी बिड़ला के नाम पर रखा जाय और इसकी आय इसी कार्य में लगती रहे।

परिचय

"गर हक़ीकी इश्क चाहे कर मजाजी इश्क तो
उसपे कोई क्या चढ़े ज़ीना न हो जिस बाम का।"

सूफीवाद का मूल तत्व बताते हुए कवि ने उक्त शेर में यही कहा कि यदि हकीकी इश्क अर्थात् ईश्वर से प्रेम करने की इच्छा हो तो यह आवश्यक है कि पहले सांसारिक प्रेम ही किया जाय। वासनात्मक लौकिक प्रेम ही वह सीढ़ी है जिसपर चढ़कर मनुष्य अलौकिक आध्यात्मिक प्रेम की ऊँची छतपर जा सकता है। सीढ़ी के अभाव में जैसे छत तक जाना दुष्कर है उसी प्रकार लौकिक प्रेम के बिना अलौकिक प्रेम की प्राप्ति भी कठिन ही है।

उक्त सिद्धांत समझ लेने पर इस निष्कर्ष तक पहुँच जाना बहुत कठिन नहीं है कि सूफीवाद मधुरा भक्ति का अरबी संस्करण है। यह दूसरी बात है कि वह यौगिक क्रियाओं से भी कुछ दूर तक प्रभावित है, परंतु उसके मूल में भक्ति ही है इससे इंकार नहीं किया जा सकता। संसार में जितने धर्म-संप्रदाय ईश्वर को केवल निराकार मानते हैं सभी में किसी न किसी रूप में यह रहस्यवादी भक्ति दिखाई देती है। इसका कारण शायद यही है कि निराकार ईश्वर के संबंध में केवल जिज्ञासा की जा सकती है और शुष्क बुद्धि के आंदोलन से उसका समाधान भी किया जा सकता है। दूसरी ओर किसी की भक्ति करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि उसके रूप का भी परिचय हमें संप्राप्त हो। उस रूप में इतनी शक्ति हो कि वह हृदय को रसार्द्र कर दे और उस रसार्द्रता का परिणाम यह हो कि हृदय उस रूपवान के दर्शन मिलन के लिये व्याकुल हो उठे। उधर इस्लाम में ईश्वर की मान्यता निराकार रूप में ही है। इसका फल यह हुआ कि इस्लाम के आरंभिक दिनों में जब कि नवीनता के कारण उसमें कट्टरता बहुत अधिक थी, कुरान और शरीअत के विरुद्ध आचरण प्राणदंड के योग्य माना जाने लगा था। ईश्वर के प्रति, अपने हृदय की रसार्द्रता के कारण, मधुरा भक्ति रखनेवाले अपने सिद्धांत का समर्थन कुरान और शरीअत द्वारा ही करने के लिये विवश थे। फिर भी समय समय पर कट्टरतावादियों के हाथों सूफियों को भारी क्लेश उठाने पड़े। मंसूर से लेकर सरमद तक अनेक ऐसे सूफियों के नाम उद्धृत किए जा सकते हैं जिन्हें कट्टर पंथियों ने विविध यातनाएँ ही नहीं दीं प्रत्युत उन्हें अपना चोला बदलने के लिये भी विवश कर दिया। मंसूर को इस्लाम की जन्मभूमि में ही

सूली पर चढ़ना पड़ा और सरमद दिल्ली में औरंगजेब की आज्ञा से मौत के घाट उतारा गया। सूफी सरमद को शहीद मानते हैं और मंसूर के विषय में कहते हैं :—

"चढ़ा मंसूर सूली पर पुकारा इश्कबाजों को
ये उसके बाम का जीना है, आये जिसका जी चाहे।"

इस्लामी जगत को केवल यह बताने के लिए कि हम भी मुसलमान ही हैं और कुरान तथा शरीअत के उतने ही पाबंद हैं जितने कि अन्य मुसलमान, सूफियों ने अपने सिद्धांत का आधार इस्लामी धर्मशास्त्र को ही बनाया। उन्होंने कुरान के वचन से ही अपने सिद्धांत का समर्थन किया और इस्लाम के पैगंबर हजरत मुहम्मद साहब के सुप्रसिद्ध चार मित्रों—हजरत अबूबक्र, हजरत उमर, हजरत उसमान और हजरत अलीमें इस्लाम के प्रथम खलीफा अबूबक्र को ही अपना नेता भी माना। डाक्टर रिजवी के कथनानुसार कश्फुल महजूब में अबुलहसन हुजबेरी ने लिखा है कि 'यह दोनों गुण सिद्दीक अकबर अर्थात् खलीफा अबूबक्र में विद्यमान थे। वे ही इस तरीके वालों के (सूफियों के) इमाम (नेता) हैं। इसका समर्थन हिंदी के सुप्रसिद्ध सूफी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने भी किया है :—

"अबू बकर सिद्दीक सयाने।
पहिले सिदिक दीन वइ आने॥"

इस प्रकार सूफियों ने अपने सिद्धांत को कुरान वचन से जोड़ते हुए इस्लाम के प्रथम खलीफा को अपना नेता स्वीकार कर लिया। फिर भी, जैसा कि कहा जा चुका है, स्वधर्मियों के हाथों वे लांछित होते ही रहे। कहना यह चाहिए कि बेल तो लग गई परंतु वह परवान न चढ़ सकी। बारहवीं शताब्दी में जब इस्लाम का प्रवेश भारत में हुआ तो उसके साथ ही सूफीवाद भी आया और यहाँ उसने अपने मनोनुकूल जलवायु पाया।

सूफीवाद के विकास के लिये भारत में भूमि पहले से ही प्रस्तुत हो चुकी थी। बौद्धधर्म के ह्रासशील होने पर जब महायान और हीनयान के बाद वज्रयान और सहज यान की भी उत्पत्ति हो गयी तो उसके फलस्वरूप आगे चलकर वैष्णव भी रहस्यवादी उपासक बन बैठे। महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने अपने चंडीदास आर जयदेव शीर्षक निबंध में लिखा है कि:

'सहजयानेर दुइ रूप आछे—एक भैरव भैरवी आर एकटि नाड़ा नाड़ी। प्रथमटि शाक्त हइया दांड़ाय द्वितीयटि वैष्णव हइया दांड़ाय।

कथा दुइयेरई एक-युगनद्ध वा युगुल रूपेर उपासना।......'जे सहज भाव बौद्ध बोधिसत्वेरा निजेर बोध चित्ते अनुभव करिया कृतार्थ हइतेन हिन्दू सहजियारा सेई भावटि राधाकृष्णेर युगल मूर्तिते आरोप करिया तद्दर्शनेई आपनादिगके कृतार्थ मने करितेन।"

अर्थात् सहज यान के दो रूप हैं—एक भैरव भैरवी और दूसरा नेड़ा नेड़ी। पहला दल शाक्त बना और दूसरा वैष्णव। काम दोनों ही का एक ही था अर्थात् युगनद्ध अथवा युगल मूर्ति की उपासना।......अपने संबुद्ध हृदय में बौद्ध बोधिसत्वगण जिस सहज भाव का अनुभव कर अपने आपको कृतार्थ मानते थे हिंदू सहजियापंथी भी राधाकृष्ण की युगल मूर्ति पर उसी भाव का आरोप कर उसी के दर्शन मात्र से अपने आपको कृतार्थ समझते थे। इन सहजिया हिंदुओं में सर्वप्रधान थे जयदेव।

जयदेव का एक ही ग्रंथ हमें प्राप्त है-गीत गोविंद। गीत गोबिंद के श्रृंगार रस प्रधान पदों को देखकर हिंदी संत साहित्य के एक आलोचक ने आचार्य क्षितिमोहन सेन की भाँति यह संदेह भी प्रकट कर दिया है कि इन पदों को देखते हुए जयदेव संत नहीं जान पड़ते। परंतु यदि यह बात मान ली जाय तो प्रियतम के वियोग में हर घड़ी कबाब होनेवाला समूचा सूफी साहित्य भी उसी श्रेणी में आ जायगा और उसकी गणना रहस्यवादी भक्ति साहित्य में न होकर कामुक साहित्य में होने लगेगी।

जयदेव की परंपरा को विद्यापति ने आगे बढ़ाया। विद्यापति अपने धार्मिक विश्वास की दृष्टि से शैव थे, परंतु उनके पद अधिकांशतः राधाकृष्ण की प्रणय गाथा से ही संबंध रखते हैं। उनका एक पद है :—

कुंज भवन सयं निकसलि हे, रोकल गिरधारी।
एकहि नगर बसि माधव हे, जनि कर बटपारी॥
दामिनि आइ तुलायलि हे, एक रयनि अंधारी।
संगक सखि अगुआइल हे, हम एक सरि नारी॥
छाड़ कन्हैया मोर आंचर हे, फाटत नव सारी।
कवि विद्यापति भाषइ हे, तुहुँ परम गंवारी।
हरिके संग किछु डर नहिं हे सुनु गुनमति नारी॥

इसमें संदेह नहीं कि उक्त पद श्रृंगार रस से लबालब भरा हुआ है परंतु अंतिम पंक्ति 'हरि के संग किछु डर नहिं हे सुनु गुनमति नारी' का संकेत कुछ और ही है। उक्त पद के अन्य शब्दों में भी वही संकेत है जिसे सूफी

बड़े प्रेम से ग्रहण करते हैं। इस परंपरा के प्रचारक के नाते जयदेव संतों में बहुत संमानित रहे हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने अपने 'दादू' नामक ग्रंथ में एक स्थान पर कहा है कि 'तखनकार दिने साधकश्रेष्ठ कबीर नानक प्रभृति सबाई भक्त जयदेवेर नामे ओ वाणीते गभीर श्रद्धा प्रकाश करिया गियाछेन। ग्रंथ साहेब उद्धृत कबीर वाणीते एक जायगाय पाई जयदेव नामदेवेर प्रति भगवानेर अपार कृपा हइयाछे। आबार एइ ग्रंथ साहेबेई उद्धृत कबीर वाणीते देखि भगति ओ प्रेमेर मर्म जयदेव ओ नामदेवई जानेन। ग्रंथ साहेबे जयदेवेर वाणीओ उद्धृत आछे। ताहाते देखि गीतगोविंदेर वाणीर संगे तार किछू मात्र भावेर संपर्क नाई अथच एई जयदेवओ बांग्लारई जयदेव। काजेई देखा जाय जयदेवेर एकटा परिचय आमादेर काछे चापा पडिया आछे।'—अर्थात् उस समय के साधकश्रेष्ठ कबीर नानक आदि जयदेव के नाम और उनकी वाणी के प्रति गंभीर श्रद्धा प्रकट कर गए हैं। ग्रंथ साहब में उद्धृत कबीर-वाणी में एक स्थान पर यह भी मिलता है कि जयदेव और नामदेव पर भगवान् ने अपार कृपा की। इसी ग्रंथ साहब में उद्धृत उसी कबीर-वाणी में यह कहा गया है कि भक्ति और प्रेम का मर्म जयदेव और नामदेव ही मानते थे। ग्रंथ साहब में जयदेव की भी वाणी उद्धृत है परंतु उसका मेल गीत-गोविंद के स्वर से नहीं है फिर भी ये जयदेव बंगालवाले जयदेव ही हैं। फलतः यही निष्कर्ष निकलता है कि जयदेव का एक परिचय अभी दबा पड़ा है।

आचार्य सेन ने जयदेव के जिस छिपे हुए परिचय की ओर संकेत किया है वह संभवतः यही है कि जयदेव कभी शुद्ध सहजिया थे। आगे चलकर वे वैष्णव बने और राधा-कृष्ण की उपासना पर उन्होंने सहजिया रंग चढ़ाया। गुह्य उपासना की बातों को गुह्य भाषा में ही रखने की प्रवृत्ति बौद्ध तांत्रिकों, योगियों, सहजयानियों आदि में पहले से ही आ गयी थी। ऐसा क्यों हुआ यह जानने के लिए हमें भारतीय धर्म-विकास का परिचय प्राप्त करना पड़ेगा। अत्यंत प्राचीन काल में ही यह बात मान ली गयी थी धर्म लोक और परलोक दोनों के लिये आवश्यक है। इसके बाद यह भी मान लिया गया कि धर्म के दो मार्ग हैं एक दक्षिण और दूसरा वाम। जो कुछ प्रत्यक्ष था, समाज के नियमानुकुल था, सदाचारसंमत था वह दक्षिण मार्ग कहा गया परंतु समाज के नियमों के प्रतिकूल और रहस्य समन्वित मार्ग वाम मार्ग। इस प्रकार दक्षिण मार्ग वेदोक्त और वाम मार्ग तंत्रोक्त बताया गया। दोनों ही मार्गों में महत्व के गुप्त तथ्य गुप्त भाषा शैली में लिखे जाते थे जैसे ब्रह्म का स्वरूप बताने के लिये इस रूपक से काम लिया गया—

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित् ॥

जिसकी जड़ ऊपर है और शाखाएँ नीचे हैं जो कभी नष्ट नहीं होता तथा वेद जिसके पत्ते हैं उस वृक्ष को जिसने जान लिया वही वेदज्ञ है। गीता का उक्त श्लोक कठोपनिषद् के निम्नलिखित श्लोक के आधार पर है।

ऊर्ध्वमूलो वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ॥

एक कल्पना में पीपल का स्थान वट ने भी लिया। मुंडकोपनिषद् में ऋग्वेद के आधार पर यह कहा गया कि एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं जिनमें एक पीपल केफलों को खाता है। परंतु छांदोग्य में पीपल की जगह वट आ गया है। कृत्या अभिचार और अलौकिक सिद्धियों का रास्ता हमारे यहाँ अथर्ववेद के समय ही खुल गया था। उसने संभवतः दूसरी शताब्दी से ही बौद्ध धर्म को भी प्रभावित करना आरंभ कर दिया। फल यह हुआ महायान वज्रयान बन बैठा। वज्रयान के प्रसिद्ध आचार्यों में पद्मवज्र, उनके शिष्य अनंगवज्र, पद्मसंभव और दीपंकर अतिश प्रसिद्ध हैं। पद्मवज्र और अनंगवज्र ने संस्कृत में ही ग्रंथ लिखकर अपने पंथ का प्रचार किया। तिब्बत में वज्रयान के प्रचार का श्रेय पद्मसंभव और दीपंकर अतिश को ही है। इस बौद्ध वाम मार्ग की तरह पौराणिक वाममार्ग भी आगे चलकर खुल गए। जो प्रवृत्ति बौद्ध वाममार्ग में थी वही शैव और वैष्णव वामपंथों में प्रगट हुई। शैव वामपंथ से पाशुपत कापालिक और कालामुख संप्रदाय निकले और वैष्णवों में गोपीलीला संप्रदाय। कुलार्णव तंत्र ने तो स्पष्ट घोषणा ही कर दी कि विष्णु के वामभाव के रूपों में नृसिंह, रामकृष्ण और गोपाल हैं जैसे—

विष्णोस्तु वामका मूर्तिर्नृसिंहो हयो भवेत्
रामकृष्णौ च गोपालौ कथितौ वामनायकौ ॥

जैन ग्रंथ दर्शनसार में भी इस ऐकांतिक साधना की चर्चा है। उसमें लिखा है—

सिरिपासणाह तित्थो सरयूतीरे पलासणयरत्थो
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी
तिमिपूरणासणेहिं अहिगय पवज्जाओ पब्भिट्ठो
रत्तंबरं धरित्ता पवहियं तेण एवं तं
मंसस्स णत्थि जीवो जहाफले दहियदुद्ध-सक्करए
तम्हा तं वं छित्ता तं भक्खंतो ण पा विट्ठो ॥

अर्थात् श्री पार्श्वनाथ के तीर्थ सरयू तट पर पलाश नामक नगर में पिहिताश्रय का शिष्य बुद्ध कीर्ति मुनि रहता था। वह शास्त्रों का ज्ञाता था परंतु मछली खाने से दीक्षाभ्रष्ट हो गया। उसने लाल वस्त्र धारण कर एकांत साधना आरंभ कर दी। वह कहा करता था कि मांस भी फल दही दूध और शक्कर की ही तरह निर्जीव है। अतः उसे खाने में कोई दोष नहीं।

परंतु इस प्रकार के काम खुल्लमखुल्ला करने का दुस्साहस कम ही लोगों में होता है। फलतः ऐसी उपासना पद्धति के लिये यदि गुह्य भाषा काम में लाई गयी तो वह उचित ही थी। इसलिये जैसे उनके पूर्ववर्ती बौद्ध तांत्रिक संधाभाषा का प्रयोग कर गए थे और जैसे उनके पूर्ववर्ती सिद्धों और परवर्ती कबीर जैसे साधकों ने उलटवांसी का प्रयोग किया वैसे ही जयदेव ने भी एक ऐसी शैली में रचना की जिसका लौकिक अर्थ तो सर्वथा शृंगार-परक है परंतु जिसमें आत्मा परमात्मा के पारस्परिक आकर्षण विकर्षण का भी संकेत मिलता है। ऐसी सांकेतिक भाषा प्रायः चार रूपों में प्रकट होती है— संध्या भाषा, उलठवांसी, अन्योक्ति और कूट। यद्यपि कतिपय विद्वान उलट वांसी को संधाभाषा का ही परवर्ती रूप मानते हैं तथापि दोनों में कुछ तात्विक अंतर भी प्रतीत होता है। जान पड़ता है कि संधा भाषा के लिये यह आवश्यक था कि उसमें अभिधेयार्थ के साथ ही कोई गूढ़ार्थ भी रहे जैसे 'तरुवर काया पंच बिड़ाल।' परंतु उलटवांसी में अभिधेयार्थ की पूरी उपेक्षा कर केवल गूढ़ार्थ पर ही जोर दिया जाता है जैसे 'नइया बिच नदिया डूबल जाय।' यह अंतर उनके नामों से भी स्पष्ट है। संधा भाषा का अर्थ ही है वह भाषा जिसके दो अर्थों में संधि हो [अर्थात् जिसमें अभिधेयार्थ और गूढ़ार्थ दोनों हों परंतु उटलवांसी का अर्थ ही है सर्वथा उलटी बात। इस प्रकार अप्रस्तुत से प्रस्तुत की ओर जाना जैसे अन्योक्ति है और पर्यायवाची अथवा ध्वनिसाम्य रखनेवाले शब्दों के सहारे अर्थनिर्देश जैसे कूट कहला कर प्रहेलिका कोटि में है वैसे ही संधा भाषा अध्यवसित रूपक की कोटि में आती है और उलटवांसी काकु के अंतर्गत। इसी के बीच सांकेतिक भाषा है जिसका अभिधेयार्थ तो कुछ और ही होता है परंतु गूढ़ार्थ उससे सर्वथा स्वतंत्र। जयदेव ने गीत गोविंद में यही किया और यही परंपरा जैसा कि दिखाया जा चुका है, विद्यापति के माध्यम से हिंदी में भी चली। यह सूफियों के बड़े काम की प्रमाणित हुई। फलतः हिंदी के सूफी कवियों ने भी इसे ग्रहण

किया जैसे मलिक मुहम्मद जायसी ने पदमावत की कथा लिखी तो अंत में उसकी कुंजी देना भी उन्होंने आवश्यक समझा। उन्होंने लिखा—

मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा
कहा कि हम किछु और न सूझा
चौदह भुवन जो तर उपराहीं
ते सब मानुस के घट माहीं
तन चितउर मन राजा कीन्हा
हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा
गुरू सुआ जेइ पन्थ देखावा
बिन गुरु जगत को निरगुन पावा
नागमती यह दुनियाँ धन्धा
बाँचा सोइ न एहि चित बन्धा
राघव दूत सोइ सैतानू
माया अलाउदीं सुलतानू
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु
बूझि लेहु जो जो बूझै पारहु ॥

जिस समय भारत में मुसलमान आए उस समय हिंदी गीतों में इस प्रकार के भाव साधारण हो गए थे। साथ ही जैसे आजकल हिंदी का साधारण अर्थ खड़ी बोली है वैसे ही उस समय ब्रजभाषा का अर्थ हिंदी था यद्यपि तब तक भाषा के लिये हिंदी शब्द प्रयोग में नहीं आया था। जहाँ तक भारत में फारसी के विकास का प्रश्न है भारत में तीन ही फारसीदाँ ऐसे हुए जिनकी फारसीदानी के कायल ईरानी भी हैं। वे तीनों हैं—अमीर खुसरो फैजी और मिर्जा गालिब ये तीनों ही क्रमशः भारत में इस्लामी शासन के उद्भव, उसके अभ्युदय और उसके पतनकाल में उत्पन्न हुए अर्थात् खुसरु ने गुलाम खिलजी और तुगलक शासन कालोंका दर्शन किया, फैजी अकबर के दरबार के रत्न थे और मिर्जा गालिब अंतिम मुगल सम्राट बहादुरशाह के दरबार की शोभा बढ़ाते थे। उन्हीं अमीर खुसरो ने ब्रजभाषा के संबंध में यह मत प्रकट किया कि विचार करने पर प्रकट होता है कि ब्रजभाषा मिठास में फारसी से कम नहीं हैं और यही मत अठारहवीं शताब्दी में ईरान से आगत संत कवि अली हजीं ने प्रकट किया। खुसरो प्रसिद्ध संत निजामुद्दीन औलिया के मुरीद थे। उनके देहावसान का समाचार पाकर जब उनकी दरगाह पर पहुँचे तो रहस्यवादी सूफी शैली में ब्रजभाषा का यही दोहा

पढ़ा कि :—

गोरी सोवै सेजपर, मुखपर डारे केस ।
चल खुसरू घर आपने, रैन भई चहुँ देस ।

अतः जैसा कि डाक्टर रिजवी ने प्रस्तुत ग्रंथ की भूमिका में लिखा है ब्रजभाषा के गीत सूफियों के बीच गाए जाते रहे होंगे और कट्टरपंथी उन पर आपत्ति भी करते होंगे, वह सर्वथा सही है इस कथन की सत्यता के प्रमाण भी हमें कम नहीं मिलते । हिंदी के एक सूफी कवि नूर मुहम्मद थे । वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के समकालिक थे । इन्होंने इन्द्रावती नामक एक सुंदर मसनवी लिखी । गुरुवर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इंद्रावती को हिंदी में सूफी पद्धति का अंतिम ग्रंथ माना है और लिखा है कि "दूसरी बात है हिंदी भाषा के प्रति मुसलमानों का भाव । इन्द्रावती की रचना करने पर शायद नूरमुहम्मद को समय समय पर यह उपालंभ सुनने को मिलता था कि तुम मुसलमान होकर हिंदी भाषा में रचना करने क्यों गए ? इसी से अनुराग बाँसुरी के आरंभ में उन्हें यह सफाई देने की जरूरत पड़ी—

जानत है वह सिरजनहारा
जो किछु है मन मरम हमारा
हिंदू मग पर पाँव न राखेउँ
का जौ बहुतै हिंदी भाखेउँ
मन इस्लाम मिस्किलै माँजेउँ
दीन जेवरी करकस भाँजेउँ
जहाँ रसूल अल्लाह पियारा
उम्मत को मुक्तावनहारा
तहाँ दूसरौ कैसे भावै
जच्छ असुर सुर काज न आवै ।
छाँड़ पारसी कन्द नवातैं
अरुझाना हिंदी रस बातैं

इसी स्थल पर हिंदी की दूसरी शैली उर्दू में भी जो बहुत दिन तक हिंदी ही जानी और मानी जाती रही सूफी काव्य लिखते समय किस प्रकार इस्लाम की दुहाई देते हुए अपनी सफाई देनी पड़ती थी इसका उल्लेख भी अप्रासंगिक न होगा । मौलाना अब्दुस्सलाम नदवी ने अपने सैरुल हिंद

नामक ग्रंथ में इस विषय पर लिखा है कि 'उर्दू शायरी की इब्तिदा (आरंभ) दकन से हुई जो निहायत कदीम जमाने से (अत्यंत प्राचीन काल से) फिक्रो तसव्वुफ का मरकज़ (पारलौकिक चिंता और दार्शनिकता का केंद्र) है। इसलिये इब्तिदा से ही उसमें सूफियाना खयालात की आमेजिश (मिलावट) हो गई। चुनांचे कुतुब शाह अल्तखल्लुस ब ज़िल्ले अल्लाह (जिनका उपनाम ज़िल्ले अल्लाह था) जिसका जमाना दिल्ली से बहुत मुकद्दस (बहुत पहले) है कहता है—

जहाँ है सीमिया का नक्श उस थे
कहे हैं आरिफाँ सब उसको तमशाल ॥

कुतुबशाह के बाद आलमगीर के जमाने में उर्दू शायरी ने ज्यादा तरक्की की तो मुस्तकिल तौर पर सूफियाना लिटरेचर की बुनियाद कायम हो गयी और ख्वाजा महमूद बहरी ने जो हजरत मुहम्मद बाकर कुद्स सरा के मुरीद थे तसव्वुफ में एक मुस्तकिल मसनवी लिखी जिसका नाम 'मन लगन' रखा। चुनांचे इस मसनवी की वजहे तसनीफ (रचना के कारण) के मुतल्लिक लिखते हैं—

चालीस बरस यही थी मस्ती।
यूं शेर यूं शाहिदांपरस्ती ॥
हर बूँद न एक अमोल मोती।
मोती न हर एक बीत (वृत्त) जोती।
हिंदी तो जबान है हमारी।
कहते न लगे हमन को भारी ॥
हर बोल में मारफत की बानी।
सीता की न राम की कहानी ॥
यह जिसमें अच्छे बयान बाला।
संसार के हाथ इक रिसाला ॥
यानि हमन सब सिफ्त, है तू ज़ात।
क्यों ज़ातकी कर सके सिफ्त बात?
निरमन को तलाश है जूं मनकी
त्यों मन को लगन दी मन-लगनकी ॥"

सूफियों को समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिये कितनी सावधानी बरतनी पड़ती थी इसका परिचय उक्त उद्धरणोंकी विशिष्ट पंक्तियों पर ध्यान देने मात्र से मिल जाता है।

जैसा कि हम पहले दिखा आए हैं जयदेव द्वारा 'राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति पर सहजिया भाव की उपासना पद्धति का रंग चढ़ा दिए जाने के बाद हिंदी गीतों में ऐसे भाव अनायास भरे जाने लगे जो सर्वसाधारण की दृष्टि में कामुकतावादी और अश्लील दिखाई पड़ते थे परंतु भक्त और साधकगण उन्हीं भावों का रहस्यवादी अर्थ ग्रहण कर पुलकित हो उठते थे। यह प्रथा इतनी व्यापक हुई कि चैतन्य महाप्रभु के बाद मधुरा भक्ति साहित्य में रसराट् रूप ग्रहण कर बैठी। रस के स्थायी भाव विभाव अनुभाव संचारी आदि अवयव मधुरा-भक्ति-रस की निष्पत्ति के लिये कल्पित किए गए। श्री रूप गोस्वामी ने इस रस का लक्षण बताते हुए लिखा:—

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरा रतिः
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः॥

इसकी टीका करते हुए जीव गोस्वामी ने कहा कि कृष्णप्रेम ही इस रस का स्थायी भाव है। कृष्ण और कृष्णभक्त ही इसके आलंबन हैं। कृष्ण-चंद्र के गुण चेष्टा और प्रसाधन उद्दीपन विभाव हैं आदि।

मधुरा-भक्ति-रस में दांपत्य भाव की अवतारणा अनिवार्य थी। उधर जिन राधा-कृष्ण को आलंबन बनाकर उक्त रस की सृष्टि हुई उनकी उपासना सहज भाव से आरंभ हो ही गयी थी। सूफी भी अल्लाह को माशूक मानते हुए भारत आए और सोलहवीं शताब्दी तक भारत में सूफियों के चार संप्रदाय विकसित होकर फूलने फलने लगे। बारहवीं शताब्दी में चिश्तिया तेरहवीं में सुहरवर्दिया पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में नक्शबंदी और कादिरिया संप्रदाय स्थापित हो गए। कबीर जैसे साधक भी अपना परिचय 'राम की बहुरिया' के रूप में देने ही लग गए थे। सूफियों का यह सिद्धांत प्रकट हो ही चुका था कि अलौकिक प्रेम की मंजिल तक पहुँचने के लिये लौकिक प्रेम का ही पथ पकड़ना चाहिए। अतः प्रत्येक सूफी काव्य का आधार किसी लौकिक प्रेम कथा को बनना पड़ा। जहाँ ऐसी कथा नहीं मिल सकी वहाँ भी अपना सिद्धांत समझाने के लिये दांपत्य भाव संबंधी रूपक ही प्रस्तुत किया गया। एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा।

अठारहवीं शताब्दी में मीर हसन ने मौजुल्आरफीन नामक एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक का नाम यद्यपि विदेशी है परंतु इसकी भाषा हिन्दुस्तानी है। कथा तो छोटी सी ही है परंतु सूफीवाद के मूल सिद्धांत को दृष्टांत द्वारा

समझा देती है। मीर हसन लिखते हैं—

इक मुहल्ले में थीं कितनी लड़कियां
खेल में बाहम थीं वो सब रहतियां
गुड़िया खेला करती थीं आपस में वो
थीं बहम इस बात पर हमकस्में वो
यानी हममें से जो ब्याही जाय तो
खेल को दिल में रखे अपने गिरो

उन लड़कियों में एक का विवाह हो गया परंतु विवाह के बाद उसकी यह दशा हुई कि

ध्यान गुड़ियों से न मतलब खेल से
कुछ खबर मस्ती से औ कुछ तेल से

अन्य लड़कियों ने जब उसकी यह दशा देखी तो उनमें से एक ने उससे पूछाः—

क्यों बहिन क्या था बहम कौलोकरार
भूलगी क्यों खेल के दारोमदार
ब्याह में तूने मजा पाया है क्या
कम किया जो खेल का सारा मजा

उसने उत्तर दिया—

तल्खो शीरीं हो तो बोलूँ माजरा
जीभ पर आता नहीं इसका मजा
बात है बाहर बयाँ से इसको तो
जी ही जाने है बयाँ है गोमगो
ब्याह जब यूँ ही तुम्हारा होयगा
तब मजा मालूम सारा होयगा
तुम भी तब यह खेल भूलोगी तमाम
और ही कुछ खेल होगा वालुस्सलाम (?)
असल जब पैदा हो फिर क्या नक्ल से
कर जरा दरियाफ्त इसको अक्ल से

अंत में कथा का निष्कर्ष निकालते हुए कवि कहता है

जब मजाजी का न हो यारो बयाँ
फिर हकीकत किस तरह होवे अयाँ

गो मसल यह है मजाजी ऐ अज़ीज
पर हकीकत को यहीं से कर तमीज
तुझको इस आलम की है गर आरजू
दीनो दुनिया को उठा रख एकसू

[यदि लौकिक प्रेम का वर्णन न किया जाय तब अलौकिक प्रेम कैसे प्रकट होगा ? यद्यपि लौकिक प्रेम दृष्टांत मात्र है परंतु अलौकिक प्रेम की पहचान यहीं से करनी चाहिए। यदि तुझे इस (प्रेम की) दुनियाँ की इच्छा है तो धर्म और संसार दोनों को उठा कर एक ओर रखदे।]

इस प्रकार जैसे हिंदुओं ने रसीले हिंदी गीतों के लिये रस शास्त्रीय और आध्यात्मिक आधार ढूँढ़ निकाले थे वैसे ही मुसलमानों ने भी परंतु धार्मिक विश्वास भिन्न होने के कारण मुसलमान हिंदुओं की मान्यताओं के प्रति सहानुभूति तो रख सकते थे परंतु उनसे सहमत नहीं हो सकते थे। अतः उन्होंने हिंदी गीतों में आए हुए शब्दों की इस्लामी धर्मशास्त्रपरक व्याख्या की। हकायके हिंदी उन्हीं व्याख्याओं का संग्रह है।

इस स्थल पर यह आपत्ति उठायी जा सकती है कि हिंदी में तो सूफी साहित्य उसके अवधी और आगे चलकर उर्दू रूपों तक सीमित रह गया। परंतु जिस समय के गीतों की बात इसमें कही गयी है उस समय व्रज भाषा का बोलबाला था। उन गीतों के रचयिताओं में कोई भी सूफी नहीं था कि वह जानबूझ कर अपने पदों में सांकेतिक शब्दों का प्रयोग करता परंतु यह जान लेने पर कि एक परंपरा भारत में भी रहस्यवादी वैष्णव पद्धति की थी और उसका साहित्य भी था तब यह मान लेने में संकोच के लिये अवकाश नहीं रह जाता कि हिंदुओं में वैसे पदों की आध्यात्मिक व्याख्या भी प्रचलित रही होगी। उन गीतों की मधुरता ने मुसलमानों का भी हृदय आकृष्ट किया होगा और उन्होंने उसकी व्याख्या अपने ढंग से कर ली बिलकुल उसी तरह जैसे आजकल रामायण के व्यास लोग रामचरित मानस की चौपाइयों के ऐसे ऐसे अर्थ निकालते और ऐसी ऐसी व्याख्या करते हैं जिनकी कल्पना तक गोस्वामीजी ने न की होगी। इसके साथ ही उस समय हिंदुओं में संगीत ब्रह्मानंद सहोदर कहा जाता था। वह मोक्ष का साधन माना जाता था। यह कहा जाता था कि

त्रिवर्ग फलदास्सर्वे दानाध्ययजपादयः
एकं संगीत विज्ञानम् चतुर्वर्गफलप्रदम् ।।

अर्थात् दान ध्यान और जप तो अर्थ धर्म और काम की ही सिद्धि प्रदान करते हैं परंतु यह संगीत विज्ञान मोक्ष सहित चारों फलों का दाता है ।।

मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने अपने ग्रंथ हकायके हिंदी को तीन भागों में बांटा है । प्रथम भाग में ध्रुव-पद में प्रयुक्त हिंदी शब्दों के सूफीयाना अर्थ दिये गये हैं। दूसरे भाग में उन हिंदी शब्दों की व्याख्या है जो विष्णु-पद में प्रयुक्त होते थे । तीसरे भाग में अन्य प्रकार के गीतों और काव्यों आदि में आये शब्दों की व्याख्या की गयी है मीर अब्दुल वाहिद के परिश्रम और उनकी सूझ बूझ की प्रशंसा करते हुए भी इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि मीर साहब मुसलमान थे और इसीलिए हिंदू संगीत की बारीकियों की पूरी-पूरी अभिज्ञता प्राप्त करने की स्थिति में न थे। स्पष्टतः उन्हें यह नहीं मालूम था कि भारतीय संगीत में गायन की ध्रुव-पद पद्धति तो है परंतु विष्णु-पद पद्धति जैसी कोई चीज नहीं है । ब्रह्म ताल और रुद्र ताल की तरह विष्णु ताल अवश्य है जिसका लक्षण यह है—

लघुत्रयद्रुतश्चैव चत्वारो द्रुलघुस्तथा ।
विष्णुतालोऽतिविख्यातो संगीते परिभाषितः ।।

कोष के अनुसार विष्णु-पद का अर्थ आकाश, क्षीर सागर, गया धाम स्थित विष्णु का पद-चिह्न आदि होता है । देवी भागवत में कहा गया है कि 'सप्तर्षि मंडल में ऊपर तेरह लाख योजन की दूरी पर विष्णु का परम पद है । वहीं इंद्र, अग्नि, कश्यप और धर्म के साथ मिलकर ध्रुव उक्त पदपर विराजमान है। स्वयं परमेश्वर ने इस ध्रुव को स्पष्ट वेगवाली काल-चक्र में निरन्तर भ्रमणशील समस्त ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्मण्डली का आश्रय-स्तंभ स्वरूप बनाया है । यह ध्रुव अपनी प्रतिभा से प्रतिभात होकर सब जगह प्रकाश देता है । जिस तरह जुए में पशु जोते जाते हैं उसी तरह ग्रह 'नक्षत्रादि अंतर्बहिर्विभाग के क्रम से काल-चक्र में नियोजित होकर ध्रुव का अवलंबन करते हैं और वायु से प्रणोदित होकर कालत्रयमंडल गति से बड़ी ही तेजी के साथ घूमा करते हैं ।'

विष्णु-पद पर विचार करते समय एक बार यह कल्पना भी उठी थी कि जैसे ध्रुव पद प्रायः चौताल में गाया जाता है और इसीलिए बहुत से गायक ध्रुवपद और चौताल में कोई अन्तर नहीं मानते, वैसे ही कहीं विष्णुपद का

भी संबंध तिताले से न हो। विष्णु के वामन रूप धारण कर संसार को तीन पग में नाप लेने की कथा प्रसिद्ध है ही। परंतु विष्णु-पद का संबंध तिताले से ही नहीं है। उधर हकायके हिंदी के अध्ययन से पता चलता है कि विष्णुपद खंड में निम्नलिखिब सांकेतिक शब्दों का संग्रह किया गया है—

गोपी[१], गूजरी[२], कुबरी[३], कुब्जा[४], ऊधो[५], पतिया[६], ब्रज[७], गोकुल[८], जमुना[९], गंगा[१०], कालिन्दी[११], मुरली[१२], बांसुरी[१३], गांग पार डफ[१४], बांसुरि बाजे, किन्नर[१५], बीन[१६], कंस[१७], शेषनाग[१८], मधुपुरी[१९], वृंदा-वन[२०], मधुवन[२१], मथुरा[२२], द्वारका[२३], यशोदा[२४], नंद[२५]महर, गोरस[२६], दहियव[२७], महिव्व [२८], दूध[२९], गोबर[३०] और रक्त, नैन[३१], बेचन[३२] जाय, दुहावन[३३] जाय, नीर भरन[३४] जाय, कांह घाट[३५] रूधौ, कन्हैया मारग[३६] रोक्यौ, लार[३७] जबान को ही, काहूकी[३८], बांह मरोरी, काहू के कर चूरी[३९] फोरी, काहू की मटकिया[४०] ढारी, काहू की कंचुकी[४१] फारी, वह बालक[४२], मेरो कछू न जाने, कन्हैया मेरो[४३] बारो तुम बाद लगावत खोर, ग्वाल[४४] गायन चरावै, कांधे कमरिधा[४५], पांयन[४६] पांचरे, मोर मुकुट[४७] सीस धरे, गोवर्द्धनधारी[४८], श्याम सुंदरिया[४९] सांवरो, अंतरजामी[५०] और पीत पिछौरी[५१]।

कुल ५१ शब्दों और वाक्य खंडों की उक्त सूची में एक भी शब्द ऐसा नहीं है जिसका प्रयोग सूर आदि वैष्णव कवियों ने न किया हो और जिसका संबंध स्वयं विष्णु अथवा उनकी कृष्णावतार लीला से न हो। फलतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए बाध्य हैं कि मीर अब्दुल वाहिद ने विष्णु की कृष्णावतार-लीला संबंधी पदों को ही विष्णुपद से अभिहित किया है। उनके विष्णु-पद का अर्थ है वे पद जिनमें कृष्णवतार की लीलाओं का चित्रण हो। अतः विष्णुपद को ध्रुवपद की तरह संगीत की कोई विशिष्ट पद्धति न मानना चाहिये। मीर साहब ने किस प्रकार के पदों की गणना विष्णुपद में की है उसके उदाहरण में बैजू बावरा का यह गीत लिया जा सकता है—

मुरली बजाय रिझाय लई मुख मोहनते
गोपी रीझि रही रस ताननते।

सुध बुध सब बिसराई
धुन सुन मन मोहे मगन भई देखत हरि आनन।
जीव जंतु पसु पंछी सुर नर मुनि मोहे
हरे सबके प्रानन।
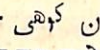
बैजू बनवारी बंसी अधर धरि बृंदावन चंद
बस किये सुनतही कानन ॥

बैजू तानसेन से बहुत पहले ही प्रसिद्ध हो चुका था । अतः उसका यह गीत ब्रजभाषा के उन गीतों का प्रतिनिधि माना जा सकता है जिनसे मीर अब्दुल वाहिद ने शब्द संग्रहीत किये हैं। उक्त गीत ध्रुवपद में बँधा हुआ है और उसके रेखांकित शब्द भी वही हैं जो मीर साहब की सूची में आये हैं। सूची के शेष शब्दों में एक भी ऐसा नहीं है जिसका प्रयोग सूर सागर में न हुआ हो ।

विष्णुपद खंड में जिन शब्दों की व्याख्या की गयी है उनमें से 'गाँग-पार डफ बाँसुरि बाजै' 'किन्नर' 'दहियव' महियव 'लार जवान कोही' और 'श्याम सुंदरिया साँवरों' पर विचार करना आवश्यक है। 'गाँग पार डफ बाँसुरी बाजै में' गाँग शब्द का अर्थ गंगा न होकर नदी मात्र है। किन्नर सम्भवतः वह वाद्य है जिसे किंगरी कहते हैं। जायसी ने इस शब्द का प्रयोग किया है ।

"हाड़ भये सब किंगरी नसैं भई सब ताँति ।
रोवँ रोवँ ते धुनि उठै बिथा कहौं केहि भाँति ॥"

'दहियव' 'महियव' संभवतः 'दहीऔ' 'महीऔ' के विकृत रूप हैं। सर्वाधिक अस्पष्ट वाक्य खंड है 'लार जवान कोही।' डाक्टर रिजवी ने इसे संदेहास्पद समझा है और आचार्य हजारीप्रसाद जीने अपने विद्वत्तापूर्ण प्राक्कथन में यह मत प्रकट किया है कि "यह अस्पष्ट वाक्य है। इसके बाद 'काहू की बाँह मरोरी" काहू के कर चूरी फोरी" काहू की मटकिया ढारी" काहू की कंचुकी फारी' है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि इसी भाव से मिलता जुलता कोई वाक्य रहा होगा। मूल शब्द क्या था यह मैं ठीक नहीं समझ सका किंतु समकालीन या ईषत् पूर्ववर्ती प्रसिद्ध गवैयों के भजनों में 'रार जब रच्यो (रची ?) कन्हाई' जैसे वाक्य मिल जाते हैं। संभवतः ऐसे ही किसी वाक्य का यह विकार हो।' मेरी समझ में यह वाक्य 'लाल जौन कोही' होना चाहिए। यदि फारसी लिपि में यह वाक्य लिखा जाय तो इसका रूप यह होगा— لال جون کوهی जो सरलतापूर्वक दूसरे लाम का गोलाई में उठा हुआ भाग दब जाने और जौन को 'जवान' पढ़ने के कारण सीधे 'लार जवान कोही' हो जा सकता है। लाल जौन कोही पढ़ने से अर्थ

में कोई बाधा नहीं रह जाती और प्रसंग भी बैठ जाता है जैसे, लाल ऐसा कोहीं-क्रोधी-कलह करनेवाला है कि उसने किसी की बाहें मरोड़ दीं, किसी के हाथों की चूड़ियाँ फोड़ डालीं, किसी की मटकी ढुलका दी और किसी की कंचुकी फाड़ डाली। रार जब रच्यो कन्हाई फारसी लिपि में इस प्रकार लिखा जायगा-- رار جب رچیو کنہائی

तब इसे 'लाल जवन कोही' पढ़ना अत्यन्त कठिन अवश्य होगा। श्याम सुंदरिया सांवरो का शुद्ध रूप श्याम सुंदरवा सांवरो होना चाहिये।

ध्रुव-पद

ध्रुवपद ध्रुपद धुरपद धुरपत ध्रौपद आदि नामों से प्रसिद्ध संगीत की यह विशिष्ट पद्धति हमारे देश में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। इसे भ्रमवश कुछ लोग राग समझते हैं और कुछ लोग ताल परंतु ध्रुपद न किसी राग का नाम है और न किसी ताल का। 'ध्रुवपद स्थैर्य गत्यो' के अनुसार ध्रुवपद संगीत की वह विशिष्ट शैली है जिसमें स्थिरता और गंभीरता हो। जिसके पद स्पष्ट हों ताल मध्य लय या विलंबित लय में रहे। स्वरों को बिना चंचल किए ही गायक परम सावधानी के साथ इच्छित राग का स्वरूप खड़ा करे। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ठुमरी या ख्याल की तरह तान का अवकाश नहीं रहता। ध्रुपद प्रायः तीन प्रकार का होता है—वंदनात्मक अथवा आशीर्वादात्मक, वर्णनात्मक और लक्षणात्मक। वंदनात्मक अथवा आशीर्वादात्मक ध्रुपद में या तो किसी देवता की स्तुति की जाती है या किसी को आशीर्वाद दिया जाता है। जैसे—

महादेव आदिदेव देवादिदेव महेश्वर ईश्वर हर।
नीलकंठ गिरिजापति कैलासवासी शिवशंकर भोलानाथ गंगाधर
रूप बहुरूप भयानक बाघंबर अंबर खप्पर त्रिशूलधर।
तानसेन के प्रभु दीजे नादविद्या संगतसों गाऊँ बजाऊँ बीना कर

गोपालनायक का निम्नलिखित ध्रुपद आशीर्वादात्मक है—

दिल्लीपति नरेन्द्र सिकंदरशाह जाके डरते धरणी हिलहिलायो।
दल शाह महिमा अपार अगाध जहाँ गुणी जन विद्या तहँ किरत छायो
नाद विद्या गावे सुनि आलम धावे दीन दुनी के तुमही अवतार आयो।
कहत नायक गोपाल चिरंजीव रहौ पादशाह गहनते आय मृग धायो

वर्णनात्मक ध्रुपद वह होता है जिसमें किसी ऋतु का वर्णन हो जैसे—

बादर झूमि झूमि आये बरन बरन बरसन प्रानप्यारे।
सुनि सुनि घनघोर चातक चकोर मोर बोलत सुहाए नंददुलारे।
तैसेई वन कुंज केलिबिहरत भुज कंठ मेलि अनुरागे जागे दोउ रूप उजारे
सखिजन बलिहार लेत रूप नैन बिहारी सोहे सूहे वसन हंसन भैनवारे॥
तीसरे प्रकार के ध्रुपद में राग या रागिनी के लक्षण कहे जाते हैं जैसे—
गावो रे गावो गुणी प्रथम भैरव खरज सुर राग।
दूजे सुर कंठ कोमल अति सोच समझ लैहौ
निषाद धैवत पंचम मध्यम गांधार रिषम साध लाग।
सा म ग सा ग म ग सा सा ध प म ग सा सा नि ध म ग सा
सा नि ध नि नि ध प ध ध प म प प म ग म म ग सा सा नि
ध नि ध प ध प म प म ग म ग रे स ग रे सा।
संगीत रतनाकर मतसों लेहौं सुधार वाक् बानी सों राग रङ्ग लैहौं माँग।

गायन की ध्रुवपद पद्धति भारत की सर्वाधिक प्राचीन गायन पद्धति है। आज भी सामवेद के मंत्र ध्रुपद पद्धति से ही पढ़े जाते हैं। यद्यपि सामवेद के मंत्रों में राग की व्यवस्था नहीं है फिर भी मंत्रों का पाठ हाथों से समय की गति नापते हुए किया जाता है। इसका लक्षण निम्नलिखित है—

गीर्वाणमध्यदेशीय भाषा साहित्यराजितम्
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नम् नरनारीकथाश्रयम्
श्रृंगाररसमावाद्य रागालापपदात्मकम्
पादान्तानुप्रासयुतं पादांतयुगकं च वा
प्रतिपादं यत्र बद्धमेव पादचतुष्टयम्
उदग्राहध्रुवकाभोगांनन्तर ध्रुवपदं स्मृतम्॥

उक्त लक्षण में भाषा और भाव की दृष्टि से निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

१—ध्रुवपद की भाषा मध्यदेशीय साहित्यिक भाषा होनी चाहिये।
२—नर-नारी की कथा के आश्रय से श्रृंगार रस की स्थिति होनी चाहिए।
३—पदांत में तुक होना ही चाहिए।

मध्यदेशीय से तात्पर्य उस मध्यदेश से है जिसके लिए राजशेखर ने कहा है कि 'यो मध्ये मध्यदेशे निवसति सकविर्सर्वभाषानिषण्णः' अर्थात् ब्रज और अवधी भाषाओं का क्षेत्र। संयोग की बात है कि मीर दर्द ने जब उर्दू शैली में सूफियाना कविता करना आरंभ किया तो उन्होंने कहा कि उर्दू में

यह सर्वथा नई चीज है। इस जबान में आध्यात्मिकता का यह उपवन फूले फलेगा। मैंने उर्दू शेर की भूमि में बीज वपन कर दिया है:—

फूलेगी इस जबान में गुलजारे मारफत
मैं यां जमीने शेर में यह तुख्म बो गया ॥

नर-नारी कथाश्रय से शृंगार रस की निष्पत्ति का समर्थन करते हुए डाक्टर डी० जी० व्यास ने स्पष्टतः कहा है कि उसमें नायिकाभेद का प्रकरण भी होना चाहिए। आगे हकायके-हिंदी के एक वाक्य को लेकर दिखाया गया है कि नायिका भेद का दूती प्रकरण उसमें किस प्रकार आया है। रागालापपदात्मकम् पद से स्पष्ट विदित होता है कि ध्रुपद में आलाप ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। प्राचीनकाल में ध्रुपद का गान मृदंग के साथ किया जाता था। गायकों का ख्याल है कि सितार से सहयोग कर ध्रुपद चौपट हो गया। इस संबंध में वे यह कथा कहते हैं कि तानसेन के वंशज सुरवसेन के पुत्र रहीमसेन ने अपने पितृव्यों से ध्रुपद न सीखकर अपने ससुर दूलह खां से सितार सीखा। उस समय सितार का विशेष संमान न था। फलतः एक बार किसी ने इन्हें चिढ़ाते हुए यह कह दिया कि बस अब आप डिड़डाड़ा, डिड़डाड़ा बजाया कीजिये। इस पर रहीमसेन ने आवेश में आकर कह दिया कि यद्यपि ध्रुपद के आगे सितार का कोई मूल्य नहीं, वह रत्न है यह कंकड़ परंतु मैं इस कंकड़ को ही रत्न के समान बना दूंगा। और उन्होंने सितार में बीन, ख्याल और धुरपद तीनों को भरा। कालिदास के निम्नलिखित श्लोक में जिस मृदंग घोष का वर्णन है वह ध्रुपद की संगति में ही बजाया गया प्रतीत होता है:—

तस्यायमंतर्हित सौधभाजः प्रसक्त संगीत मृदंग घोषः
वियद्गतः पुष्पकचंद्रशालाः क्षणंप्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥

[पंचाप्सर सरोवर के भीतर भवन में बजाए गए संगीत-मृदंग की ध्वनि आकाश तक पहुँच कर श्री रामचंद्र के पुष्पक विमान की चंद्रशाला को भी गुंजा देती है।]

हिंदुओं ने ध्रुपद को जो संमान दिया था उसकी रक्षा मुसलमानों ने भी की। मुसलमान बादशाहों के दरबार में ध्रुपद की गायकी ही नहीं प्रचलित थी प्रत्युत उस पर शास्त्रार्थ भी होते थे। गोपाल नायक और बैजू बावरा में शास्त्रार्थ होने का प्रवाद भारतीय गायकों में आज भी प्रचलित है। उनके सवाल जवाब निम्नलिखित बताये जाते हैं:—

षरज कहांते रिषभ कहांते कहांते उपज्यो सुर गंधार ?
मध्यम कहांते पंचम कहांते कहांते धैवत निषाद नार ?
आरोहि कहांते अवरोही कहांते मूर्च्छना कहांते गीत संगीत की धार
कहै लाल गोपाल सुनिये बैजू बावर अथाह जाकी गति अगम अपार

और उन्हें उत्तर देते हुए बैजू ने गाया:—

मेघ की सुर षरज, रिषभ सुर छागरी, दादुर की सुर है री गंधार
मध्यम तमचुर सुर, पंचम कोकिल; केकी सुर धैवत, निषाद सुर कुजार
आरोह हंससों अवरोह वृषभसों मुरछना सर्पसों गीत संगीत की धार
कहै बैजू सुनिये गोपाल लाल केते गुनी पिछड़े काहू न पायौ नाद को पार

मुगल बादशाहों में प्रायः सभी के दरबारों में ध्रुपद गाये जाने के प्रमाण उपलब्ध हैं जैसे अकबर के समक्ष तानसेन गाते थे—

जुक्तिजुक्त लाग डाट कर देखायो ।
तानसेन कहै सुनौ शाह अकबर प्रथम भैरव गायो ॥

जहाँगीर के दरबार में यह ध्रुपद गाया गया था—

तेरे कुल होत आये तिमिर लंग
अमर बाबर हिमायूं दीनदार
जाके शाह अकबर ताके साह जहाँगीर नरपति नर
करनराज तेज कायथ दायम को तव अटर ॥

किसी गायक ने शाहजहाँ के समक्ष गाया था—

नर साहजहाँ जहालौं रवि ससि नभ रहै और वसुधा
वर सदा बरस दिन दिन बरसन को ।

संगीत के तथोक्त शत्रु आलमगीर औरंगजेब के सामने यह ध्रुपद गाया गया था—

सुभ घरी तोलों साह आय बैठे रतन जड़ित तखत
साह आनंदन आनंद आसिस बढ़ाई
साह औरंगजेब तुम कोटि बरस लौं ऐसे ही
करो बरस गांठ, बधाई ।

कहने का तात्पर्य यह कि मुसलमानों में गायन की ध्रुपद पद्धति और हिंदी अर्थात् ब्रजभाषा और अवधी इतनी लोकप्रिय थी कि राजदरबार से लेकर सूफियों के समां तक में उनका प्रवेश हो गया था। यह पहले ही

कहा जा चुका है हिंदू भावापन्न गीतों से कट्टरतावादी मुसलमान चिढ़ते थे। उन्हीं को शांत करने के लिए हिंदी गीतों में आए हुए शब्दों की इस्लाम के अनुसार व्याख्या की गयी। फिर भी शायद उन लोगों का आक्रोश बना ही रहा जिसे दूर करने लिये इस प्रकार के ध्रुपदों की रचना हुई:—

हजरत महम्मद रसूल अली बली
मकबूल ख्वाजे हसन बसरी
हजरत अब्दुल वाहिद बिन जैद
फजल बिन आलम सुलतान
इबराहीम अदहम करम काज कीजै

फिर तो कर्बला की लड़ाई का वर्णन भी ध्रुपद पद्धतिसे गाया जाने लगा जैसे:—

लड़े हसन हुसेन इमाम सैयद सुभट
धूम मची भई जङ्ग ताती।
खेत चिरछाइयो सिंहके छावड़े
भल्ले. चले खड्ग गिरे हाथी।
करबला भूमि पर महाभारत भयो
भए सहीद जब नबी नाती।
करै मातम खोदावतक मजलूम कौ
लानत यजीद पर सदा चलि जाती॥

मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने ध्रुवपद खंड में निम्नलिखित शब्दों का संग्रह किया है:—

सुसंती (सरस्वती[१]) सुर (स्वर[२]) ताल[३] बंधन[४] अनागत[५] अतीत[६] सम[७] नायक[८] भुवनायक[९] बहुरूपी[१०] सुढंग[११] बेसी(वेशी[१२]) जमनिका[१३] (जवनिका) पात्र[१४] रूप[१५], रंग[१६] गुण[१७] कालिमा[१८] मांग[१९] भरी[२०] मांग-बिथरी[२१] मांग सेंदुर[२२] अलक[२३] जूड़ा[२४] लिलार[२५] नासिका[२६] बेसरि[२७] माथा[२८] बारगह[२९] टीका[३०] तिलक[३१] लोचन[३२] नेत्र[३३] बांके[३४] नेत्र छबीले[३५] नैन अलसाने नैन[३६] भौंह[३७] बरुनी[३८] कटाक्ष[३९] काजल[४०] आँख[४१] अखियाँ मटकी[४२] अखियाँ फड़की[४३] सरवन[४४] (श्रवन) कर्णफूल[४५] (तरौना) कपोल[४६] मुख[४७] (आनन) अधर[४८] लाली[४९] पान की लाली[५०] रसना[५१] मुसकान[५२] कन (कण्ठ[५३]) कंठमाला[५४] (रुद्राक्ष) कर[५५] अंगुरी[५६] तटस्थ[५७] (तलहथ) छतिया[५८] मोटी (कठिन[५९]) आभूषण[६०]

दो थन[६१] चूचुककी[६२] कालिमा खेलत चीर भरक्यो उभर[६३] गये थन हार हार[६४] पीठ[६५] फुफंदी[६६] (डोरी) जांघ[६७] चरण[६८] पैर के आभूषण[६९] चुस्त चरण[७०] झनकार[७१] आभरण[७२] शृंगार[७३] मोती[७४] मुक्ताहल[७५] मोती[७६] प्रदान करना । गर्दन बंद[७७] नयकरौं जुहार[७८], मुसकाय तोड़ो हार[७९] वस्त्र[८०] (चौरी चौला सारी लहँगा पग पगा) राता चुन सिर[८१] तक चुनरी, आंचर[८२] पल्लू मृगाजिन[८३] बाँकी पुष्टि[८४] वाक वाक्य अँगिया[८५] कंचुकी[८६] कटाओकी[८७] अंगियत सौधभरी[८८] अँगिया अँगिया[८९] फाटी जोबन भार तनी[९०] बंद[९१] काढ कटारिहिं[९२] कब तन बौरी मूर्ख गँवार चोला और है[९३] भौतिक बाध निवार टूटे[९४] बन्द छूटे बन्द तरके तड़के[९५] कटावौ की चोली[९६] दलमली होय रल्ल में राई[९७] न जाय सुहागिन[९८] सुहागिनि[९९] दुहागि[१००] दुहागिनि बालापन[१०१] नैहर[१०२] तरुनापन[१०३] ससुराल[१०४] बूढ़ापन[१०५] व्याह[१०६] मांगल[१०७] मांगल्य[१०८] सहेला[१०९] सोहला[११०] सौत[१११] मान[११२] मटकनि मानमती[११३] मानवती जब जब मान[११४] दहन करे तब तब अधिक सुहाग सखी[११५] तुम मान छाड़[११६] दई कत हेत हे मानमती उठ चल[११७] बेग लाई व्यासही चतुरदस विद्या निधान रैन मानुस[११८] बालर[११९] वासर भोर[१२०] सूरज सूर्य[१२१] उदय छाँह[१२२] दोपहर की[१२३] छाँह[१२४] चंद्रमा[१२५] चंद्रमा[१२६] की ठंडक का गरमी में परिवर्तन पवन[१२७] चंदन[१२८] अगर[१२९] केवल[१३०] कमल कुमुदनी[१३१] तरैया[१३२] भोरकी[१३३] तयौ तरैयाँ तुम नहँ मई[१३४] भोर की तरैयाँ रैन[१३५] कटी तारे गिनत रैन गयी[१३६] पीतम कंठ लागे रैन बिहानी[१३७] पीतम संग लालनको[१३८] हो देखन न देहौ तोई[१३९] संग जाऊँ अवधि बदि[१४०] गयी मोसो अनत रति मानी[१४१] तहीं सिधारी[१४२] जहाँ रति मानी रति के चिह्न[१४३] सब प्रकार के भये कपोल[१४४] नैन आनन उर कहि देत रति के आनन्द भै पठई तौ लैन सुधि[१४५] मैं [तैं ?] रति मानी जाय झगरो कीन्यो[१४६] सरिजन आध लैहौ[१४७] बटाय समीप[१४८] संग विरह[१४९] वियोग गर्भ[१५०] अंगन[१५१] ॥

उपर्युक्त सूची से प्रकट होता है कि मीर अब्दुल वाहिद ने ध्रुवपद शैली से गाये जाने वाले हिंदी गीतों से एक सौ इक्यावन शब्द और पद अपने ध्रुपद खंड में संग्रहीत किए हैं। प्रस्तुत पुस्तक के प्रवीण प्राक्कथन-लेखक ने अस्पष्ट शब्दों और पदों के अर्थ पर विशद विचार किया है। वह पर्याप्त भी है। परंतु पुष्टिवाक् के संबंध में कोई निर्णय नहीं दिया है। फलतः प्रयत्न की गुंजाइश है। पुष्टिवाक के संबंध में आचार्य द्विवेदीजी की दो स्थापनाएँ हैं।

पहली यह कि 'फारसी लिपि की घसीट लिखावट और लिपिकारों के प्रमाद से कुछ का कुछ लिख दिया गया है और कुछ का कुछ पढ़ लिया गया है। दूसरी यह कि यतः प्रसंग दली मली सुरतमृदिता साड़ी का है अतः इस शब्द का अर्थ भी कुछ वस्त्र संबंधी ही होगा।' वस्तुतः बात ऐसी ही है। सारी करामात लिखावट की है।

डाक्टर मोतीचंद ने भारतीय वेशभूषा में पुष्पपट्ट नामक एक कपड़े का उल्लेख किया है और उसे फूलदार कपड़ा बताया है। यह भी कहा है कि संभवतः जामदानी से तात्पर्य हो। उसी पुस्तक में एक दूसरे सूत्र से प्राप्त सूचना के आधार पर यह संभावना प्रकट की है कि संभवतः पुष्पपट्ट किमखाब था और काशी में बनता था।

उक्त पुष्पपट्ट कालांतर में सरलतापूर्वक पुष्पवाट बन गया होगा। वैसे ही जैसे बौद्धों का आयोगपट्ट योगपट्ट बना और फिर जोगबट्टु बनकर जोगवाट बन गया। जायसी ने राजा रतनसेन के जोगीवेश धारण के संबंध में लिखा है :—

> चंद बदन औ चंदनदेहा
> भसम चढ़ाई कीन्ह तन खेहा
> मेखल सिंधी चक्र धंधारी
> जोगवाट रुदराछ अधारी

और यदि पुष्पवाट फारसी लिपि में लिखा जाय तो यों लिखा जायगा— پشپوات नुक्ते और शोसे के अभाव में इसे कोई भी पुष्टिवाक् पढ़ सकता है। भ्रम से पुष्टिवाक् पढ़ लिए जाने योग्य एक दूसरा शब्द पटवास भी है जिसका बाण भट्ट ने अनेक स्थलों पर प्रयोग किया है जैसे—

१—गंधतैलावसेकसुगंधिना दीपिकाचक्रवालालोकेन कुंकुमपटवासधूलिपटलेनेव पिंजरीकुर्वन्सकललोकम्।

२—तांबूलपटवासकुसुमप्रसाधितसर्वलोकम्।

३—मुष्टिप्रकीर्यमाणकर्पूरपटवासपांसुलामनोरथसंचरणरथ्या इव यौवनस्य।

४—पटवासपांसुपटलेन प्रकटितमंदाकिनीसैकतसहस्रमिव शुशुभे नभस्तलम्।

उक्त वाक्य में जहाँ जहाँ पटवास शब्द आया है हर्षचरित के हिंदी टीकाकारों ने उसका सीधा अर्थ सुगंधित वस्त्र लिखने में संकोच किया है। एक सुधी पुरातत्व विद ने पटवास का अर्थ कपड़े में लगाने की सुगंधि

अथवा इत्र का फाहा माना है। इत्र का फाहा अर्थ मानने में संकोच की बात इतनी ही है कि इत्र का फाहा तभी बन सकता है जब पहले इत्र हो। अतः जब तक यह प्रमाणित न हो जाय कि हर्षवर्द्धन के समय तक इत्र का आविष्कार हो चुका था तब तक पटवास का अर्थ इत्र का फाहा नहीं माना जा सकता। यही आपत्ति कपड़े में लगाने के इत्र अर्थ में भी है। हर्ष-चरित के एक आधुनिक संस्कृत टीकाकार का यह अर्थ अधिक ग्रहणीय प्रतीत होता है कि 'एवं प्रतीयतेस्म यथा पटवासेन वस्त्रसौगंध्यसमादकचूर्णविशेषेणैव पिंगलीकृतः इति भावः।' अतः पटवास का सीधा अर्थ है वह वस्त्र जो सुगंधित चूर्ण आदि से सुवासित किया गया हो। उपर्युक्त सभी उद्धरणों में आये हुए पटवास का यह अर्थ ग्रहण करने पर सभी वाक्यों का आशय स्पष्ट हो जाता है जैसे पहले वाक्य का अर्थ होगा कि सुगंधित तेल भरे हुए दीपक के आलोकके बहाने कुंकुम और वस्त्रों की रंगाई और उन्हें सुगंधित करने के काम में लाए गए पदार्थ के कणों की धूल से समस्त लोक को पीला करता हुआ सा। इसी प्रकार दूसरे वाक्य का अर्थ यह न होकर कि उदारतापूर्वक वितरण किए गए पान सुगंधियों और फूलों से सभी लोग अलंकृत हुए यह अर्थ होगा कि पान फूल और सुगंधित वस्त्रों के वितरण से सभी लोग शोभित हुए। पान इत्र और खिलअत में वस्त्र देने की प्रथा भारतीय मुगल दरबार में उसके अंतिम दिन तक जारी रही। इत्र का आविष्कार हिंदू राज्य काल में न होने के कारण इसकी पूर्ति स्वभावतया सुगंधित पुष्पों द्वारा की जाती होगी और जैसे मुगलों के दरबार में पान इत्र और वस्त्र वितरण चलता था वैसे ही उस समय पान फूल और सुवासित वस्त्र का वितरण चलता होगा। वस्त्र सुवासित करने वाले चूर्ण के अर्थ में 'पटवास' का प्रयोग केशव ने भी किया है:—

जल थल फल फूल भूरि अंबर पटवास धूरि स्वच्छ जच्छ कर्दम हिय देवन अभिलाखे।

प्रसादजी के संस्मरण लिखते हुए श्री रायकृष्णदासजी ने लिखा है कि सुरती बनाने में प्रसादजी को विविध भाँति के सुगंधित द्रव्यों का प्रयोग करना पड़ता था। फलतः जो सुगंधित पानी बचता था उसमें प्रसादजी अपने घर के कपड़े और कभी-कभी राय साहब के घर से भी कपड़े मंगवाकर रंग दिया करते थे। उन वस्त्रों पर हलका रंग चढ़ जाता था और उसमें से भीनी भीनी सुगंध हफ्तों निकला करती थी। इस प्रकार रायसाहब ने जो विवरण उपस्थित किया है उससे यह अनुमान भी किया जा सकता है कि इस

प्रकार वस्त्रों को रंगने और सुगंधित करने की कल्पना संभवतः हर्षचरित के पटवास शब्द से ही प्रसाद जी के मस्तिष्क में जागरित हुई। उनकी कल्पना का स्रोत यह भी हो सकता है। तीस तैंतीस वर्ष पूर्व तक या यों कहिये कि खादी और स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ होने के पहले तक मथुरा के गोस्वामियों में आबेरवाँ का दुपट्टा सुगंधित कर ओढ़ने की चाल थी। खस, छारछबीला, नागरमोथा, पानड़ी, अगर, तगर, केशर, कस्तूरी, चन्दन चूरा, हर सिंगार की डण्डी आदि को औंटाकर और उसमें रंग कर सन्दली दुपट्टा तैयार किया जाता था।

बोलचाल में किसी मानिनी के कुपित होकर आचरण करने की क्रिया को खटवास पटवास लेकर पड़ जाना कहते हैं। खटवास तो खाट पकड़ने के अर्थ में है परंतु पटवास का अर्थ इसमें पहनने का वस्त्र है। हिंदी शब्दसागर में पटवास का अर्थ लहँगा दिया भी है। अतः विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि पुष्टिवाक् पढ़ा जानेवाला शब्द अपने मूल रूप में पुष्पवाट या पटवास रहा होगा।

ध्रुवपद खंड में मीर अब्दुल वाहिद ने जितने शब्द संग्रहीत किए हैं उन सब में से सरस्वती सुर ताल बंधन अनागत अतीत सम भुवनायक और सुढंग ऐसे शब्द है जो ध्रुवपदों में प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। शेष शृंगारी साहित्य में भरे पड़े हैं। कुछ तो ऐसे भी हैं जो संस्कृत के रस साहित्य में भी प्रयुक्त हुए हैं और अपने रसीलेपन के कारण उन भावों ने हिंदी गीतों और कवित्तों में भी स्थान प्राप्त किया है। उदाहरण के लिये 'मैं पठई तो लैन सुधि मैं (तै) रति मानी जाय।' अर्थ यह कि नायिका ने नायक को मना लाने के लिये अपनी सखी को उसके पास भेजा परंतु नायक के पास जाकर वह स्वयं उस पर रीझ रही। जब वह लौटकर नायिका के पास आयी तो उपालंभ देते हुए उसने कहा कि मैंने तो तुझे उसकी खबर लेने के लिये भेजा था परंतु तू वहाँ जाकर स्वयं उसके प्रेम में फँस गई।

सन् १३६३ ई० में संग्रहीत ग्रंथ शार्ङ्गधर पद्धति में दूती का उपहास करती हुई नायिका कहती है—

बहुनात्र किमुक्तेन दूति मत्कार्य सिद्धये।
स्वमांसान्यपि दत्तानि वक्तव्येषु तु का कथा॥

अधिक बकवाद की आवश्यकता ही क्या है। अरी दूती मेरा कार्य सिद्ध करने के लिये तूने तो अपना मांस तक दे दिया। बात की बात ही क्या है।

अमरु शतक में यह भाव और भी खटमिट्ठे रूप में प्रकट किया गया है जैसे:—

निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो।
नेत्रे दूरमनंजने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः
मिथ्यावादिनि दूति बांधवजनस्याज्ञातपीडागमा
वापीं स्नातुमितो गतासि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम् ॥

यह देखकर कुतूहल होता है कि अकबर के महामन्त्री अबुल फजल ने आईने अकबरी में संस्कृत साहित्य शास्त्र विषयक अपने ज्ञान का परिचय देते हुए हू-ब-हू यही श्लोक उद्धृत किया है।

इसका सीधा अनुवाद पदमाकर ने किया—

धोय गयी केसर कपोल कुच गोलनकी
पीक लीक अधर अमोलन लगाई है।
कहै पदमाकर त्यों नैन हू निरंजन भे
तजत न कंप देह पुलकनि छाई है।
बाद मति ठानै झूंठबादिनि भई री आज
दूतपन छोड़ धूतपनमें सोहाई है।
आई तोहिं पीर न पराई महा पापिनी तू
पापी लौं गई न कहूँ वापी न्हाय आई है॥

परंतु इसी श्लोक के एक दूसरे भावानुवाद के साथ अर्वाचीन हिंदी के एक साहित्यकार हरिऔधजी का एक संस्मरण भी जुटा हुआ है। प्रायः बीस वर्ष पूर्व नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित भारतेंदु जयंती के अवसर पर हरिऔधजी ने भाषण किया था कि मैंने बचपन में भारतेंदु को उस समय देखा था जब कि मैं अपने गुरु बाबा सुमेरसिंह के साथ काशी आया था। भारतेंदु उनसे मिलने आए। उनके साथ हनुमान कवि भी थे जिन्होंने कविता सुनाने की फर्माइश होने पर निम्नलिखित कवित्त सुनाया था—

आई अनमनी ह्वै बदन पियराई छाई
सुधि न रही है कछू आपने परारे की।
कहति कछू है मुख कढत कछू को कछू
देखति हौं आज तेरी गति मतवारे की।
नैकु थिर ह्वै के बैठु राई लोन वारौं तो पै
तू तौ हनुमान मेरी संगिनी है बारे की।

बजर परो री मो पै पठई कहाँ ते तहाँ
नजर लगी री तोहिं जुलफनवारे की ।।

यद्यपि प्रसंगांतर है तथापि उल्लेख्य है कि उक्त कवि को भारतेंदु ने दुशाले से और बाबा सुमेरसिंह ने अंगूठी से पुरस्कृत किया। जैसा कि दिखाया जा चुका है 'मैं पठई तो लैन सुधि तैं रति मानी जाय' में भी वही भाव है। पूरा वाक्य ध्रुपद शैली के किसी गीत का नहीं प्रत्युत किसी दोहे का अर्द्धांश है और दोहा ध्रुपद शैली में शायद नहीं गाया जा सकता क्योंकि ध्रुपद में पद के जिस विस्तार की आवश्यकता पड़ती है वह दोहे से संभव नहीं। ध्रुपद खंड में एक दोहा उद्धृत है भी—

साजन आवत देखि कै हे सखि तोरौं हार
लोग जानि मुतिया चुनै हौं नय करौं जुहार ।।

उक्त दोहे में अभिधेयार्थ है कि प्रिय को आते देखकर हे सखी मैंने मोतियों का हार तोड़ डाला। लोकजन टूटे हुए हार के मोती चुनने लगे और मैं झुककर प्रियतम के चरणों में प्रणत हो गई। मीर साहब के अनुसार यह गूढ़ार्थ है कि प्रियतम से मिलने के लिये मैंने अपने सांसारिक बंधन तोड़ डाले और प्रियतम के समक्ष नम्रता से नत हो गई। दुनिया वालों ने मेरे इस कार्य से उपदेश ग्रहण किया।

जान पड़ता है जैसे मीर अब्दुल वाहिद कृष्णलीला संबंधी पदों को विष्णुपद समझते थे वैसे ही उन गीतों को जो कृष्ण लीला से संबंध नहीं रखते थे परंतु जिनमें अभिधेयार्थ के साथ गूढ़ार्थ भी निश्चित रहता था उसे ध्रुवपद मानते थे अर्थात् वह निश्चित पद जिसमें गूढ़ार्थ भी अवश्य हो। मीर साहब ने इन दोहों का जो परिचय दिया है वह भी महत्वपूर्ण है। इस दोहे को उन्होंने गवाई राग में गाया जाने वाला बताया है। परंतु छ राग छत्तीस रागिनी और उनके रावण जैसे भारी भरकम परिवार में किसी का नाम गवाई नहीं मिलता। डाक्टर कृष्णमाचारी ने अंग्रेजी में लिखित अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में राजा लक्ष्मणसेन की सभा के प्रमुख कवि धोयी को Gavai Dhoyi Kaviraj गवई धोयी कबिराज लिखा है और गवई का अर्थ गवैया माना है जिससे अन्य लोग सहमत नहीं हैं। यहाँ गवाई का अर्थ गेय पद जान पड़ता है। या यह भी हो सकता है कि गौरी रागिनी हो जो 'गवरी' लिखावट के कारण 'गवई' अथवा 'गवाई' पढ़ ली गयी हो।

प्रस्तुत पुस्तक के तीसरे अध्याय में मीर अब्दुल वाहिद ने उन पदों से शब्द संग्रहीत किए हैं जिनकी गणना न तो ध्रुपद में की जाती है और न विष्णुपद में। उसमेंनिम्नलिखित शब्दों वाक्यखंडों तथा दोहे चौपाइयों का संग्रह है—

सयाला व[१] माह पाला महाला[२] कौंच[३] सूर ससते जाड़[४] न जाय जाड़ लगत. मरत[५] कंठ लाग प्यारी पवन झनमका सीव जनाया[६] कामी कंत बहुरि किन लाया फूल[७] या पुहुप वसंत[८] पंचम[९] हार[१०] (हमेल) चौसर[११] सेहरा[१२] हौ बलिहारी साजना[१३] साजन मो बलिहार हौ साजन सिर सेहरा[१४] साजन मुझ गलहार पुर[१५] नौलासी[१६] कोकिला[१७] भँवर[१८] (भौरा) मालती[१९] तरवर भेख फिर[२०] आया मेरो चोला झटका[२१] कुंवर संग हौ चांचर[२२] खेलौ सरब अंग काँची कलियाँ[२३] न तोर मुरझ गयीं डालियाँ दो थन हाथ न लावा[२४] पावा गालियाँ इंह बन फूलि पुंडरिया[२५] उह बन तीस ले चल रानी[२६] के दुलहा अपने देस साजन आओ[२७] हमारी बारी हम तन फूलि फूलन फुलवारी[२८] तुझ कारन मैं सेज संवारी तन मन जोबन[२९] जिउ बलिहारी नन्ह नन्ह पात जो अंवली सरहर पेड़ खजूर[३०] तिन चढ़ि देखौ बालमा नियरे बसै कि दूर उठ सुहागिन मुख न जोह[३१] छैल खड़ौ गल बाहि थाल भरी[३२] गजमोतिनहिं गोद भरी कलियाहि मीत चिरातन परिहरो[३३] भूली कौन हुलास अष्टुनहार[३४] बनस्पति बरखा[३५] (वर्षा) मेह[३६] स्वांति नखत स्वाती नक्षत्र[३७] अथवा बूंद सेवाती झकोर[३८] (लकवाह) बड़ी बड़ी[३९] बूंदन फुंइहै[४०] पपीहा[४१] दादुर[४२] मोर[४३] दामिनी[४४] कुंस[४५] बक[४६] चकई[४७] सारस[४८] घन गरजे[४९] धरने[५०] पहना हरिया चोला वीरबहूटी[५१] ऊंच खाल फिर[५२] नीर हिलोरा अंध कूप[५३] निसि पैघ व[५४] हिंडोला एक[५५] हिंडोला बाप दिया दुजा जो[५६] पिया दई तिसरे[५७] हिंडोले न पांव धरौ जोबन[५८] लहरें ले दुइ[५९] खांभ चार[६०] डांडे कंवल[६१] (कमल) भौंरा[६२] तितरी[६३] त्यौहार[६४] (दिवाली होली) प्रियतम[६५] लग तन होली कीन्हा धुरहंडी[६६]।

तीसरे अध्याय में संग्रहीत उक्त ६६ शब्दों और वाक्यांशों और पदों के अध्ययन से जान पड़ता है कि जैसे मीर साहब ने ध्रुवपद के अंतर्गत कृष्ण-लीलेतर परंतु गूढार्थ समन्वित पदों से शब्द संग्रह किये हैं और कृष्णलीला संबंधी पदों को विष्णुपद के अंतर्गत लिया है वैसे ही तृतीय अध्याय में उन्होंने संभवतः सूफी काव्यों से शब्द संग्रहीत किये हैं। दोहा चौपाई के

साथ ही बरवै छंद तक का प्रयोग इस धारणा की पुष्टि करता है। जैसे

हम तन फूलि फूलन फुलवारी
तुम्ह कारन मैं सेज संवारी

चौपाई है और

नन्ह नन्ह पात जो अंबली, सरहर पेड़ खजूर।
तिन चढ़ि देखौं बालमा, नियरे बसै कि दूर॥

दोहा है वैसे ही यह बरवै का अर्द्धांश है—

इंह बन फूलि पुंडरिया
उह बन तीस॥

पिछले खेवे के हिन्दी सूफी कवियों ने बरवा छन्द का प्रयोग आरम्भ कर दिया था। नूर मुहम्मद के प्रसंग में आचार्यवर शुक्ल जीने अपने इतिहास में लिखा है कि—'एक विशेषता और है। चौपाइयों के बीच बीच में इन्होंने दोहे न रखकर बरवै रखे हैं।'

साथ ही उक्त ६६ शब्दों में शायद ही ऐसा कोई शब्द हो जिसका प्रयोग जायसी के पदमावत में न मिलता हो। यह तथ्य भी इसी धारणा की पुष्टि करता है कि मीर अब्दुल वाहिद ने तीसरे अध्याय में सूफी काव्यों से ही शब्द लिये हैं। कतिपय उदाहरण अप्रासंगिक न होंगे जैसे—

सयाला व माह पाला—लागेउ माघ परै अब पाला। महाला महवट के अर्थ में आया प्रतीत होता है। कौंच जैसा कि द्विवेदीजी ने लिखा हैं कौंध है। अतः महाला का अर्थ महवट होना चाहिये जैसे—नैन चुवहिं जस महवट नीरू। महवट को कुछ लोग माघ मास की वर्षा मानते हैं परंतु सैयद इंशा ने मौसिमे बरसात में इसका वर्णन किया जैसे—

इस मौसिमे बरसात में क्यों घर न रहें हम
आंखें भी बरसंती हैं महावट के बराबर॥

'सूर सप्त ते जाड़ न जाय' का अर्थ यदि 'सौर सपेती आवै जूड़ी' के जोड़ पर न भी लगाया जाय तो भी कोई हानि नहीं। सात सात सूर्यों के उदय से भी जाड़ा नहीं जाता इतना ही अर्थ पर्याप्त है।

इस संग्रह में एक शब्द है नौलासी। वैसे तो नवला का अर्थ तरुणी होता है परंतु मीर वाहिद के अनुसार सूफियों में उन बहुत सी दशाओं एवं

ईश्वर की अनेक अनुकंपाओं की ओर संकेत किया जाता है जो अत्यधिक संख्या में प्राप्त होती रहती हैं। यह सांकेतिक अर्थ ग्रहण करने पर मान लेना होगा कि नौलासी पाठ अशुद्ध है और उसकी जगह नौलाखी होना चाहिए। इस संग्रह का 'अष्टुनहार बनस्पति' भी विचारणीय है। यह किसी दोहे का प्रथम चरण जान पड़ता है। इसकी व्याख्या में लिखा है कि यदि हिंदी वाक्य में अष्टुनहार बनस्पति का उल्लेख हो तो इसका तात्पर्य १८००० जगत् से होता है और कभी-कभी ७२ संप्रदायों तथा इसी प्रकार की वस्तुओं की ओर संकेत होता है। इस कथन से अनुमान लगाया जा सकता है कि जैसे वियोगावस्था में रुदन से वृक्ष के पत्तों तक के झड़ जाने का वर्णन किया जाता है कुछ ऐसा ही भाव यहाँ भी है। नागमती के विरह वर्णन में जायसी ने लिखा है :—

> जेहि पंखी के नियर होइ, कहै बिरह कै बात।
> सोई पंखी जाइ जरि तरिवर होइ निपात॥

अतः अष्टुनहार या तो अंसुवनधार या हार था जिसके कारण वनस्पति के झड़ने का उल्लेख किया गया होगा या ओट निहार बनस्पति जैसी कोई चीज होगी जिसका भाव 'तृन धरि ओट कहति बैदेही' से मिलता जुलता होगा। परंतु संभावना अंसुवनधार या हार की ही है क्योंकि अष्टुनहार का जो सांकेतिक अर्थ बताया गया है उसकी उपलब्धि अंसुवनहार या धार मानने से ही होगी।

इस प्रकार विचार करते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हकायके हिंदी में वे शब्द संग्रहीत किये गये हैं. जो हिंदी के गीतों और काव्यों में प्रचुरता से प्रयुक्त होते रहे हैं। गाने बजाने के प्रेमी सूफी मुसलमानों में वे गीत और काव्य बहुत लोकप्रिय थे परंतु कट्टरतावादी कानोंमें वे कटु जँचते थे जिसके कारण सूफियों ने उन हिंदी शब्दों का सांकेतिक अर्थ बताना आरंभ किया। १५६६ ई० तक जितने शब्दों का सूफी दृष्टिकोण से अर्थ निश्चित हो गया था उन सबका संग्रह कर मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत बड़ा काम किया। मीर साहब के इस ग्रंथ का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत कर डाक्टर सैयद अब्बास रिजवी ने भी हिंदी की जो सेवा की है उसके लिये वे भी बधाई और धन्यवाद के पात्र हैं। आचार्य हजारी प्रसाद जी द्विवेदी का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने प्राक्कथन लिखकर मेरा बोझ बहुत हल्का कर दिया। अपनी सहज उदारता के कारण वे मुझ पर अयाचित कृपा करते रहते है।

उन्हें शिष्टाचारगत कोरा धन्यवाद देकर उसका महत्व घटाना नहीं चाहता। पुस्तक में मुद्रण सम्बन्धी भूलों के लिए मैं पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। इसी स्थल पर डाक्टर रिजवी से भी निवेदन है कि यदि वे अगले संस्करण में नागरी अक्षरों में मूल पाठ भी दे दें तो पाठकों को अधिक सुविधा होगी। बिड़ला ग्रंथमाला में मेरे सहायक श्री कल्पनाथ सिंह ने जिस निष्ठा के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है उसके लिए उन्हें साधुवाद। साथ ही सर्वाधिक धन्यवादार्ह हैं वे सूफी मुसलमान जिन्होंने सार्वदेशिक और सार्वकालिक 'प्रेम की पीर' का अलौकिक अनुभव किया और गोस्वामी तुलसीदास जी के इस कथन का प्रमाण उपस्थित कर दिया कि—

उरवी परि कलहीन होइ,
ऊपर कला प्रधान
तुलसी देखु कलाप गति
साधन घन पहिचान ॥

दीपमालिका, सं० २०१४ वि०
वाराणसी

—रुद्र काशिकेय
प्रधान संपादक
बिड़ला ग्रंथमाला

———

दो शब्द

हक़ाएक़े हिंदी मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी की उस समय की कृति है जब अकबर पाखंडी आलिमों के चंगुल से निकल न सका था और उसके शासन काल के केवल १० वर्ष ही व्यतीत हुए थे अतः इस पुस्तक को समकालीन बादशाह की देन नहीं अपितु समय की पुकार समझना चाहिए जब कि मुसलमान सूफियों को इस बात का विश्वास हो गया था कि हिंदू धर्म के सिद्धांत समझना तथा दूसरों को समझाना परमावश्यक है। शेख़ अब्दुल नबी तथा मख्दूमुलमुल्क मुल्ला अब्दुल्ला सुल्तानपुरी के जोर के आगे, जो संकीर्ण विचार से सुन्नी मुलमानों के अतिरिक्त हिंदुस्तान में किसी को भी जीवित रहने देना नहीं चाहते थे, मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी जैसे सूफियों का यह प्रयास हिंदुओं और मुसलमानों के एक दूसरे के साहित्य एवं धर्म से अत्यंत प्रभावित होने का बहुत बड़ा प्रमाण और हिंदी की लोकप्रियता का साक्षी है।

यह पुस्तक जिसकी किसी अन्य प्रति का कोई पता नहीं, मुझे प्राप्त हो सकी, इसके लिये मैं अपने आप को बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ। मै काशी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के विशेष रूप से आभारी हूँ जिनके सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप यह पुस्तक काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का प्राक्कथन भी डाक्टर साहब की महती कृपा का फल है। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री डा० संपूर्णानंद की सेवा में जब मैंने यह पुस्तक प्रस्तुत की और इस बात की आज्ञा चाही कि मैं उसे उनके चरणों में सर्पित कर सकूँ तो डाक्टर साहब मेरे प्रोत्साहन हेतु इस बात पर विशेष आपत्ति प्रकट न की। मैं डा० साहब के प्रति जितनी भी कृतज्ञता प्रकट करूँ, कम है।

कहा जाता है कि अब्दुर रहीम खानेखानाँ कहीं यात्रा को जा रहे थे। एक भिखारी अपनी ताँबे की पतीली लिए उनके पास घुसा ही जा रहा था। लोगों ने उसे रोका किंतु खानेखानाँ ने उसे अपने पास बुलाकर उसके विषय में पूछा। उसने उत्तर दिया मैंने सुना है कि महान व्यक्तियों के स्पर्श मात्र से तांबा सोना हो जाता है। मैं इसकी परीक्षा करना चाहता था।

खानेखानाँ ने उसे पतीले के बराबर सोना तुलवा दिया। कथन सत्य ही निकला। मुझे भी विश्वास है कि डा० साहब के चरणों में पहुँचकर यह तुच्छ प्रयास भी बहुमूल्य हो जाएगा।

सैयिद् अतहर अब्बास रिज़वी
(एम० ए० पी-एच० डी०
यू० पी० एजूकेशनल सर्विस)

लखनऊ
६-२-५७

प्राक्कथन

मेरे मित्र डा० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी ने फ़ारसी के बहुमूल्य आकर ग्रंथों का हिंदी भाषांतर प्रकाशित करने का बड़ा स्तुत्य प्रयास आरंभ किया है। अबतक 'खलजी कालीन भारत' 'आदि तुर्क कालीन भारत', 'तुगलक कालीन भारत'—जैसे महत्वपूर्ण अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। जिस लगन और उत्साह के साथ डा० रिज़वी ने इस काम को हाथ में लिया है उसे देखते हुए यह आशा होती है कि बहुत शीघ्र ही फ़ारसी भाषा में लिखा हुआ वह पूरा साहित्य, जो हमारे मध्यकालीन भारतीय इतिहास का प्रधान स्रोत माना जाता रहा है, प्रामाणिक रूप में हिंदी पाठकों के सामने आ जाएगा। इन ऐतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त अन्य अनेक फारसी ग्रंथों का भी अनुवाद आपने प्रस्तुत किया है। मीर अब्दुल वाहिद की 'हक़ाएक़े हिंदी' उन्हीं महत्वपूर्ण पुस्तकों में एक है। मीर अब्दुल वाहिद का जन्म सन् १५०६ ई० के आसपास हुआ था अर्थात् ये सूरदास के समकालीन थे। ये हरदोई जिले के प्रसिद्ध बिलग्राम नामक स्थान के निवासी थे जिसके बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'यहाँ अच्छे अच्छे विद्वान मुसलमान होते आए हैं। अपने नाम के आगे 'बिलग्रामी' लगाना एक बड़े सम्मान की बात यहाँ के लोग समझते थे'। सन् ईस्वी की १८ वीं शताब्दी के मध्य भाग में मीरगुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी ने 'मआसिरल केराम' नाम की एक पुस्तक लिखी थी जिसमें बिलग्राम के सूफ़ियों और कवियों का इतिहास है। हिंदी के रसवर्षी कवि सैयद मुबारक अली बिलग्रामी (जन्म सन् १५८३ ई०) इसी बिलग्राम के निवासी थे जिनकी 'अलक शतक' और 'तिलक शतक' नामक पुस्तकें काफी प्रसिद्ध हैं। फिर सैयद गुलाम अली 'रसलीन' (रचनाकाल सन् १७३७ ई०) भी यहीं के निवासी थे जिनका 'अंग दर्पण' और 'रस प्रबोध' सहृदयों में बहुत समादृत हैं।

'हक़ाएक़े हिंदी' बहुत महत्वपूर्ण रचना है। मीर अब्दुल वाहिद ने इस पुस्तक में हिंदी ध्रुपद और विष्णुपद गानों में लौकिक श्रृंगार के वर्ण्य विषयों को आध्यात्मिक रूप में समझने की कुंजी दी है। रिजवी साहब ने लिखा है कि "इन हिंदी कविताओं में भारतीय तथा हिंदू संस्कार मूल रूप से

विद्यमान रहते थे। हक़ाएक़े हिंदी के अध्ययन से पता चलता है कि ध्रुपद तथा विष्णुपद को सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त थी। श्रीकृष्ण तथा राधा की प्रेमकथायें सूफ़ियों को भी अलौकिक रहस्य से परिपूर्ण ज्ञात होती थीं। इन कविताओं का 'सभा' में गाया जाना आलिमों को तो अच्छा लगता ही न होगा कदाचित् कुछ सूफ़ी भी इन हिंदी गानों की कटु आलोचना करते होंगे, अतः इन कविताओं का आध्यात्मिक रहस्य बताना भी परम आवश्यक सा हो गया। अब्दुल वाहिद सूफ़ी ने 'हक़ाएक़े हिंदी' में उन्हीं शब्दों के रहस्य की बड़ी गूढ़ व्याख्या की है जो उस समय हिंदी गानों में प्रयोग में आते थे।"

वैसे तो लौकिक प्रतीकों की आध्यात्मिक रूप में व्याख्या करना संसार के सभी धर्मग्रंथों में मिल जाता है परंतु मध्यकाल में लौकिक प्रतीकों से आध्यात्मिक तत्त्वों की ओर इंगित करना विशिष्ट रूप में प्रकट होता है। भारतवर्ष के धार्मिक साहित्य में सन् ईस्वी की पाँचवीं-छठीं शताब्दी में तंत्र प्रभाव व्यापक रूप से दिखाई देने लगता है, और ऐसी साधनाओं का प्रवेश होता है जो धर्मशास्त्रीय दृष्टि से बहुत अच्छी नहीं समझी जातीं। धीरे धीरे उनकी आध्यात्मिक व्याख्या शुरू होती है और लौकिक प्रतीकों का आध्यात्मिक अर्थ किया जाने लगता है। योगियों, सहजयानियों और शाक्ततांत्रिकों के ग्रंथों में साधना को गुह्य रखने की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है। बौद्ध तांत्रिकों में "संध्या भाषा" या "संधा भाषा" के नाम से इस गूढ़ भाषा को स्मरण किया जाता है। परवर्ती काल में नाथ योगियों और कबीर-दास आदि निर्गुणमार्गी योगियों में उलटबांसियों का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह इसी संध्या भाषा का परवर्ती रूप है। मैंने अपनी कबीर नामक पुस्तक में दिखाया है कि लौकिक प्रतीकों की आध्यात्मिक व्याख्या करने में टीकाकारों ने काफ़ी स्वतंत्रता का परिचय दिया है। कुछ प्रतीक तो संप्रदायों में रूढ़ हो गए हैं। परंतु अधिकांश के बारे में अर्थ करते समय मूल सिद्धांत को दृष्टि में रखकर स्वाधीनतापूर्वक अर्थ कर लिया गया है। एक ही पद में आए हुए एक ही शब्द को भी कभी कभी भिन्न भिन्न टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न अर्थों में ग्रहण किया है। सहजयानी सिद्धों, नाथपंथी योगियों और निर्गुण संतों के सांकेतिक अर्थों का विचार करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जिन सांकेतिक अर्थों में प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ द्वारा निगिरण हो गया होता है वहां धर्म ही संकेत का कारण होता है, धर्मी नहीं। दूसरे

शब्दों में कहा जाय तो जब सिद्ध योगी लोग मन को मच्छ या हरिण कहते हैं तो चांचल्य धर्म की ही ओर संकेत होता है। यथा-प्रसग कोई भी चांचल्य धर्मी अप्रस्तुत उसका लक्ष्य हो सकता है। इस प्रकार यही चांचल्य-धर्मी हरिण या मच्छ अन्य साधर्म्य वश (जैसे भीरुत्व) किन्हीं अन्य वस्तुओं के द्योतक भी हो सकते हैं। 'हरिण' या 'मच्छ' शब्द के साधर्म्य के प्रसंगवश कई पदार्थ ग्रहण किए जा सकते हैं इसीलिये प्रतीकों की व्याख्या करते समय मूल सिद्धांत को ध्यान में रखना आवश्यक है।

सूफी साधना का केंद्रबिंदु प्रेम है। वह प्रेम भी लौकिक नहीं बल्कि लोकोत्तर प्रेम। वैष्णव साधकों में भी यह बात पाई जाती है। वस्तुतः जगत् के समस्त लौकिक क्रियाकलाप का चिन्मुखीकरण ही वैष्णव साधकों का, और सूफी साधकों का भी, प्रधान लक्ष्य है। चिन्मुखीकरण वैष्णवों का पारिभाषिक शब्द है। संसार के जितने भी संबंध हैं वे सभी जड़ोन्मुख न होकर चिन्मुख हो जायँ तो मनुष्य के सर्वोत्तम पुरुषार्थ के साधक हो जाते हैं। जड़ोन्मुख प्रेम प्रेमी को समस्त बाह्य जगत् से अलग कर देता है और उसमें पृथक्त्व-बुद्धि उत्पन्न कर देता है। अपने को समस्त जगत से पृथक् समझने की बुद्धि अहंकार की देन है जो वस्तुतः जड़प्रकृति का चित्संपर्क से उत्थित संक्षोभ मात्र का परिणाम है। इसीलिये जहां पृथक्त्व बुद्धि है वहां जड़िमा का प्राधान्य है। पुत्र, कलत्र, धन-सम्पत्ति आदि के बारे में जो राग है वह भगवत् प्रेम से बहुत भिन्न नहीं परंतु फिर भी यदि वह पृथक्त्व बुद्धि उत्पन्न करता है तो जड़ोन्मुख हो जाता है अर्थात् जड़ वस्तुओं की ओर उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। जब वह चेतन की ओर उन्मुख होता है तो वह विश्वजनीन प्रेम के रूप में प्रकट होता है और धन्य हो जाता है। भागवत में कहा है कि जो प्रेम पुत्र कलत्र धन इत्यादि में पृथक्त्व बुद्धि से किया जाता है वह असत् होता है किंतु उसी प्रेम को यदि अपृथक्त्व बुद्धि से किया जाय तो वह सत् हो जाता है क्योंकि वह सबका मूल-निषेचन करता है—

यद युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत् पृथक्त्वात्।
तैरेव सद्भवतिकेत् क्रियतेऽपृथक्त्वात् सर्वस्य तद्भवति मूल-निषेचनं यत्॥
८-६-२६॥

यह अपृथक्त्व बुद्धि जिस प्रक्रिया से उत्पन्न होती उसीका नाम चिन्मुखीकरण है। भाव यह है कि मनुष्य अपनी समस्त रागात्मक वृत्तियों को जड़

शरीर धर्मों की ओर नियोजित न करके चिन्मात्र पुरुष अर्थात् भगवान् की ओर नियोजित करे। इसके लिये वैष्णव साधकों ने अनेक प्रकार की साधनाओं की चर्चा की है। मनुष्य को एकांत चिंतन के द्वारा इस बात का पता लगाना पड़ता है कि उसका वास्तविक भाव क्या है अर्थात् उसकी वास्तविक सत्ता किस बात में है। जड़ जगत् में सब समय अपनी वासनाओं की पूर्ति होना संभव नहीं है। जड़-जगत् में कोई चाहे कि उसे विलास की समस्त सामग्री प्राप्त हो और फिर भी किसी प्रकार की बाधा या विघ्न उपस्थित न हों तो यह संभव नहीं परंतु भाव-जगत् में किसी प्रकार के संघर्ष की आशंका नहीं है और अनायास ही मनुष्य समस्त विलास-सामग्रियों की कल्पना कर सकता है। दीर्घ चिंतन और एकांत सेवन के बाद मनुष्य अपने सच्चे रूप की उपलब्धि करता है और ठीक ठीक समझ पाता है कि उसका वास्तविक भाव क्या है। उसका मूल भाव दास्य हो सकता है, सख्य हो सकता है, वात्सल्य हो सकता है, माधुर्य हो सकता है या फिर इन्हीं भावों के भिन्न-भिन्न रूप हो सकते हैं, उसे अपने आनंद के लिये जिस दूसरे साथी की आवश्यकता होती है उसी रूप में उसे भगवान् प्राप्त होते हैं। दीर्घकाल की साधना के बाद 'भाव' सान्द्र या गाढ़ होता है और सच्चे प्रेम के रूप में प्रकट होता है और उसमें किसी प्रकार की जड़ आकांक्षा या पृथक्त्व बुद्धि नहीं होती। प्रेम को भक्तजन 'परम पुरुषार्थ' मानते हैं। मोक्ष या निर्वाण का सुख इसके सामने तुच्छ है। लौकिक प्रेम से भिन्न बताने के लिये इसे शास्त्रीय परिभाषा में 'प्रेमा' (प्रेमन् शब्द का पुल्लिग रूप) कहते हैं।

सूफी साधकों में भी इस चिन्मुखीकरण की प्रवृत्ति है। जो कुछ भी लौकिक है, ऐहिक है, उसमें लोकोत्तर बुद्धि दीर्घकालीन अभ्यास से प्राप्त होती है। जो साधारण जगत् का जड़-विषयक राग है, वह चिन्मुख होकर श्लाघ्य हो जाता है। इसी बात को बताने के लिये लौकिक प्रतीकों की आध्यात्मिक व्याख्या की जाती है। सूफ़ी कवियों को अपने पूर्ववर्ती कवियों की भाषा विरासत में मिली थी। इसलिये उन्हों अपनी रचनाओं में 'साक़ी' 'शराब' 'प्याला' 'माशूक़' 'ज़ुल्फ' 'दीदार' आदि शब्दों का यथेच्छ प्रयोग किया है, परंतु उनके आध्यात्मिक संकेत भी बता दिए हैं। सूफियों का 'हाल' वस्तुतः भावावेश की अवस्था है। बहुत पहले से ही अनेक सूफी साधकों ने इन शब्दों के आध्यात्मिक संकेत की ओर इंगित किया है। मुहिसिन फैज काशानी ने इस प्रकार के कुछ शब्दों के आध्यात्मिक संकेत दिए हैं। पं०

राजपूजन तिवारी की 'सूफी मत—साधना और साहित्य' नामक पुस्तक से उनके बताए हुए कुछ संकेत दिए जा रहे हैं—

रुख—चेहरा, कपोल (परम-सौंदर्य के ऐश्वर्य अर्थात् दयालुता, प्रकाश, परम-सत्य आदि की अभिव्यक्ति)।

ज़ुल्फ—परम ऐश्वर्य के सर्वशक्तिवान् स्वरूप की अभिव्यक्ति अर्थात् सर्वग्रासी, महाकाल, अंधकार, परम सत्य को छिपानेवाला दृश्यमान जगत् स्वरूप पर्दा।

खाल—तिल; वास्तविक 'एकत्व' का केंद्र-विंदु जो ओट में है अतएव काले रंग द्वारा प्रकट किया जाता है।

खत—कपोल में बनने वाला गड्ढा (आध्यात्मिक स्वरूपों में परम-सत्य की अभिव्यक्ति)।

चश्म—आँखें (परमात्मा का अपने दासों और उनकी रुझाव को देखना)।
अबरू—भौंह (परमात्मा के सिफ़त जो उसके जात को छिपाये हुए हैं)।
लब—होंठ; (जिलाने वाली परमात्मा की शक्ति)।
शराब—प्रियतम के दर्शन से भावाविष्टावस्था का उत्पन्न होना जब तर्क आदि करने की शक्ति का अवसान हो जाता है।

साकी—सत्य जो अपने को सभी व्यक्त रूपों में अभिव्यक्त करना पसंद करता है।

खुम—परमात्मा के नामों और गुणों का प्रकट होना।
खुंधखाना—समस्त दृश्य और अदृश्य जगत् जो परमात्मा के प्रेम और सत्ता की शराब को अपने में लिये हुए हैं।
पैमाना—जगत् का प्रत्येक अणु जो अपनी शक्ति के मुताबिक उस प्रेम की शराब को ग्रहण कर पाता है।

बुत—कभी परम सौंदर्य (परमात्मा) के लिए, कभी कामिल (पूर्ण मानव) के लिए, कभी मुर्शीद (गुरु) तथा कभी क़ुत्ब के लिए इसका प्रयोग किया गया है कभी परमात्मा के सिवा अन्य उपास्य के लिए भी इसका प्रयोग हुआ है।

'हक़ाएक़े हिंदी' के लेखक मीर अब्दुल वाहिद ने हिंदवी कविता में

आए हुए प्रतीकों के आध्यात्मिक संकेतों का विस्तारपूर्वक विवरण दिया है। मुहसिन फैज काशानी प्रतीकों से तुलना करने पर इनमें कहीं कहीं अंतर दिखाई देगा। जैसे नेत्र के लिये मीर अब्दुल वाहिद ने तीन आध्यात्मिक अर्थ बताए हैं प्रथम (१) तो उस नाम की ओर संकेत होता है जो दो रूपी संसार को प्रकट करता है तथा ऐसे विशेषणों का योग है जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं फिर (२) कभी बसीर (द्रष्टा, ईश्वर) के नाम के अर्थ की ओर संकेत होता है और कभी कभी (३) मोमिन (धर्म निष्ठ) की बुद्धि और ज्ञान तथा उससे शिक्षा ग्रहण करने वाले नेत्रों की ओर संकेत होता है। किंतु काशानी ने इसी शब्द का संकेत परमात्मा का अपने दासों और उनकी रुझाव की ओर देखने को बताया है। इसी प्रकार और शब्दों के अर्थ में भी थोड़ा बहुत अंतर खोजा जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रसंगवश एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थ में लिया जा सकता है। जो आध्यात्मिक संकेत बताए गए हैं वे साधर्म्यवश किसी अन्य प्रसंग में अन्य अर्थ को भी ध्वनित कर सकते हैं।

मीर अब्दुल वाहिद की यह पुस्तक कई दृष्टियों से बहुत ही महत्वपूर्ण है। उससे सोलहवीं शताब्दी के पूर्व की व्रज भाषा और उसके साहित्य का आभास तो मिलता ही है, सूफी साधकों की उस उदार दृष्टि का भी पता चलता है जिससे उन्होंने हिन्दू और मुसलमान धर्म की मूलभूत एकता को खोज निकाला था। मीर अब्दुल वाहिद ने क़ुरआन और हदीस से प्रमाण देकर अपने आध्यात्मिक संकेतों की प्रामाणिकता सिद्ध की है। उनका यह प्रयास बहुत ही उत्तम और श्लाघ्य हुआ है। इससे उनकी गंभीर निष्ठा, अद्भुत भक्ति और अत्यंत उदार दृष्टि का संधान मिलता है। उन्होंने केवल शब्दों के आध्यात्मिक संकेत बताकर ही विश्राम नहीं लिया बल्कि इन शब्दों को आश्रय करके जो विचार बन सकते हैं और बनते हैं उनको भी समझाने का प्रयत्न किया है। हिंदी के सूफी साहित्य के अध्ययन के लिये यह पुस्तक महत्वपूर्ण सिद्ध होगी और साथ ही उस उदार भावधारा को प्रत्यक्ष कराएगी जिसके अभाव में हमारा देश खंडित और विच्छिन्न होता जा रहा है।

इस पुस्तक को पढ़ते समय मुझे ऐसा लगा कि व्रजभाषा के कई शब्द फारसी प्रतिलिपिकारों ने ठीक न समझने के कारण अशुद्ध लिख दिए हैं, या यह भी सम्भव है कि वे ठीक ठीक पढ़े न जा सके हों। कई शब्दों के बारे में तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनके स्थान पर मूल शब्द क्या

रहा होगा किंतु कई के बारे में कुछ साफ समझ में नहीं आया। पृष्ठ ३८ पर 'भुवनायक' शब्द है जो वस्तुतः बहुनायक रहा होगा। तानसेन के भजनों में 'तानसेन के प्रभु बहुनायक' कई बार आया है। इसी तरह उसी पृष्ठ पर 'वेसी' शब्द है जो संस्कृत के वैशिक का रूप जान पड़ता है। मिर्जा ख़ान ने अपने 'तुहफ़ातुल हिंद' में 'वेसिक' लिखा है जो संस्कृत 'वैसिक' शब्द का व्रजभाषा रूप है (मौलाना जियाउद्दीन संपादित ए ग्रामर आफ दि व्रज भाषा, पृष्ठ २२)। पृष्ठ ४० पर बारगह शब्द आया है जो लिलार और माथा के प्रसंग में है। इसके पहले जूड़ा का उल्लेख आया है और बाद में टीका और तिलक का। 'बारगह' शब्द का अर्थ दरबार इस प्रसंग में ठीक नहीं जँचता। संभवतः यह बारगुहे या भालगुही लट जैसा कोई शब्द होगा। व्रजभाषा कविता में शिरोभूषण के प्रसंग में 'गुहेबार' या 'भालगुही लट' का प्रयोग मिल जाता है। 'कविप्रिया' में 'बेनी चिकबैनी की बनाइ गुही कंचन कुसुम रुचि लोचननि पोहिये' (कविप्रिया १५।८२) में गुही बेनी का उल्लेख है। इसी तरह व्रज भाषा के अन्य कवियों ने भालगुही लट का वर्णन किया है। मीर अब्दुल वाहिद के समकालीन कवि ब्रह्म ने ललाट की बेंदी का वर्णन करने के प्रसंग में गुहे केशों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

> "वेंदी जराव ललाट दिये, गुहि डोरी दोऊ पटिया पहिनाई।
> ब्रह्म भनै रिपु जाति मनौं रवि की मुसुकें जन राहु चढ़ाई॥

ऐसा जान पड़ता है कि इसी प्रकार के किसी शब्द से यहाँ अभिप्राय है। पृष्ठ ४५ पर अंगुरी या उंगलियों की चर्चा करने के बाद **तटस्थ** का उल्लेख है जो 'तलहथ' जान पड़ता है। पृष्ठ ५२ पर आंचर और पल्लू का उल्लेख करने के बाद **'मृगाजिन बाँकी'** की चर्चा है और यह बताया गया है कि इससे पाप से मिश्रित खिरके की ओर संकेत किया जाता है क्योंकि वही हिजाब (आवरण) का अस्तित्व है। फिर यह भी बताया गया है कि कभी कभी इससे 'वजूदे मुतलक' अर्थात् परमेश्वर के अनुचित वस्त्रों में प्रकट होने का संकेत होता है। इस बात को और भी स्पष्ट करने के लिये एक पद्य दिया गया है जिसका भावार्थ यह है—

कामाग्नि मनुष्य का हृदय नहीं जला सकती। कारण कि हक़ (सत्य, ईश्वर) कभी कभी बातिल (असत्य) की जबान में प्रकट हुआ करता है।

'मृगाजिन' संस्कृत का शब्द है। इस शब्द का व्रज भाषा में प्रयोग असंभव तो नहीं है, पर बहुत अधिक नहीं होता। और यदि हो भी तो इस पुल्लिंग शब्द का विशेषण 'बांकी' नहीं बन सकता। ऐसा जान पड़ता है कि यहाँ 'मृगाजिन' पाठ ठीक नहीं है, 'मरगजनि बांकी' होना चाहिए। 'मरगज' या 'मरगजा' मसले हुए के अर्थ में व्रजभाषा में प्रयुक्त होता है। बिहारी सतसई में आया है,

तुम सौतन देखत दई, अपने हिय के लाल।
फिरति सबन में डहडही, वही मरगजी माल॥

यहाँ 'मरगजी माल' मसली हुई माला के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार जायसी ने रत्नसेन और पद्मावती के संभोगवर्णन के प्रसंग में कहा है:—

पुहुप सिंगारि संवारि जौ, जोबन नवल बसंत।
अरगज ज्यों हिय लाइ कै, मरगज कीन्हे कंत॥

अर्थात् उस बाला ने यौवन के नवल वसंत में पुष्पों का जो शृंगार किया था उसे पति ने हृदय में अरगजे की भाँति लगाकर मसल डाला।

'हक़ाएक़े हिंदी' में आंचर और पल्लू के बाद जो 'मरगजनि बाँकी' है वह संभोग कालीन दली मली साड़ी का ही वाचक होगा। प्रसंग भी वैसा ही है और इसके आध्यात्मिक संकेत के साक्ष्य के लिये जो पद्य लिखा गया है वह इसी ओर संकेत करता है। शृंगारशतिका में मरगजी का अर्थ 'रतिमृदिता' दिया है। इसलिये 'मरगज' का अर्थ हुआ संभोगकालीन मर्दन जिससे साड़ी में संरोट या सिलवट पड़ जाती है। बांकपन से इन्हीं संरोटों की ओर इंगित जान पड़ता है जिसे बिहारी ने इस प्रकार कहा है:—

नट न सीस साबित भई, लुटी सुखन की मोट।
चुप करि ए चारी करति सारी परीं सरोंट॥

इसी पृष्ठ पर 'मृगाजिन' के बाद पुष्टिवाक् की चर्चा है जो विचारों की आकुलता और मस्तिष्क की उद्विग्नता की ओर संकेत करने वाला बताया गया है। न तो संस्कृत के शृंगारी साहित्य में इस प्रकार के किसी शब्द का पता चलता है और न व्रज भाषा के। मैं ठीक ठीक नहीं समझ सका कि मूल रूप में यह शब्द क्या रहा होगा। परंतु प्रसंग वही 'मरगजनि' का है।

इसलिये यह भी 'सिलवट बांक' अर्थात् मसली हुई वस्तु की टेढ़ी मेढ़ी सिलवटों की चर्चा असंभव नहीं है। फारसी लिपि में इसे प्रतिलिपिकारों ने जरा विकृत करके लिख दिया होगा। पृष्ठ ६१ पर बताया गया है कि यदि एक सखी को मध्यस्थ बनाकर किसी को सन्मार्ग पर लाने के लिये भेजें कि वह उस मानमती को प्रियतम के मिलन की ओर बुलाए और सजाए और इस प्रकार की रचनाएँ मध्य में रखे और कहे 'उठ चल बेग करन लाई व्यास ही चतुर्दस विद्यानिधान' और कहे 'तुम मान छाड़ दई कत हेत हे मानमती' तथा इसी प्रकार की अन्य कोई रचना हो तो इससे सन्मार्ग पर लानेवाला एवं बुलानेवाला समझा जाता है तथा रसूलिल्लाह (मुहम्मद साहब) तथा उनके अनुयायी जो तत्संबंधी 'खिलअत' पहने हैं, समझे जाते हैं। यहाँ 'उठ चल बेग' वाला पद कुछ विकृत रूप में प्राप्त हुआ है, ऐसा जान पड़ता है। लगता है कि यह पद कुछ इस प्रकार का रहा होगा—उठ चल देर कर न, लाई बेसाहि चतुर्दश विद्यानिधान' भाव यह है कि ऐ मानवती ! उठ चल देर न कर तू तो ऐसी बातें करती है जैसे चौदहों विद्या का निधान खरीदकर ले आई हो। 'व्यास ही', 'बेसाहि' का विकृत रूप जान पड़ता है। इसका अर्थ मोल लेना या खरीदना होता है। आगे मानमती की व्याख्या में बताया गया है कि बुद्धि का पर्दा वास्तविकता पर रुक जाता है। 'चतुर्दस विद्या बिसाहने' में उसी बुद्धि के पर्दे की ओर संकेत जान पड़ता है।

पृष्ठ ६२ पर दो चार **'रैन मानुस'** का उल्लेख है। एक जगह बताया गया है कि इससे असावधानी की अवधि अथवा युवावस्था की अवधि की ओर संकेत होता है। फिर कभी मनुष्य की अवस्था और कभी भौतिक संसार की ओर संकेत होता है। दूसरे स्थान पर बताया गया है कि संभव है कि 'रैन मानुस' से उस समय की ओर संकेत करें जब सृष्टि की रचना न हुई थी और 'बासर' 'भोर' से सृष्टि रचना की ओर संकेत करें। दोनों प्रसंगों से यह जान पड़ता है कि 'रैन मानुस' मूलतः (रैन माँवस) अर्थात् अमावस्या की रात्रि, रहा हो। 'मांवसे' फारसी लिपि में लिखे जाने पर 'मानुस' की भ्रांति पैदा कर सकता है।

पृष्ठ ८१ पर **लार जबान कोंही** है जिसे अनुवादक डा० रिज़वी ने भी संदेहास्पद समझा है। यह अस्पष्ट वाक्य है। इसके बाद 'काहू की बाँह मरोरी, काहू के कर चूरी फोरी, काहू की मटकिया ढारी, काहू की कंचुकी फारी', है, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि इसी भाव से मिलता

हुआ कोई वाक्य रहा होगा। मूल शब्द क्या था, यह मैं ठीक नहीं समझ सका किंतु समकालीन या ईषत् पूर्ववर्ती प्रसिद्ध गवैयों के भजनों में 'रार जब रच्यो कन्हाई' जैसे वाक्य मिल जाते हैं, संभवतः ऐसे ही किसी वाक्य का यह विकार है।

पृष्ठ ८७ पर है यदि हिंदवी में सयाला (?) व माँह 'व पाला' अथवा उनसे संबंधित शब्दों का प्रयोग हो तो उनसे इस विषय की ओर संकेत होता है...।' यहाँ 'सयाला' और 'माँह' शब्द संदेहास्पद हैं। सयाला, 'सियाल' (सं० शीतकाल) और 'माँह', (सं० माघ) जैसा कुछ होना चाहिए। हिंदी में 'सियरा' 'सीयरा' और 'सियाला' शब्द शीतकाल के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं और माघ का महीना तो शीतकाल है ही।

पृष्ठ ८८ पर 'पौन झनमका सीव जनाया' में 'सीव' शब्द सं० शीत का ही प्राकृत रूप है। 'झनमका', 'झोंका' है।

पृष्ठ ६६ पर 'अष्टुनहार वनस्पति' भी संदेहास्पद है। इसका मूल रूप क्या रहा होगा यह मैं ठीक नहीं समझ सका। इसी प्रकार पृष्ठ ६७ का 'लेकवाह' शब्द भी संदेहास्पद है। यदि यह शब्द 'लौकाह' हो तो उसका अर्थ बिजली का कौंधना हो सकता है जो 'झकोर' शब्द के साथ प्रयोग किया जा सकता है।

डा० रिजवी ने इस बहुमूल्य ग्रंथ का हिंदी में रूपांतर करके हिंदी साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की है। इस पुस्तक से केवल सूफी साधकों के आध्यात्मिक संकेतों का ही ज्ञान नहीं होता, सूरदास के पूर्ववर्ती व्रज भाषा-साहित्य की एक समृद्ध परंपरा का भी आभास मिलता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हिंदी के सहृदय पाठक इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत करेंगे। डा० रिजवी ने बड़े परिश्रम से इस पुस्तक का पाठोद्धार और अनुवाद किया है। वे सभी सहृदय साहित्यप्रेमियों के हार्दिक धन्यवाद के उचित पात्र हैं। परमात्मा उन्हें उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु प्रदान करें ताकि वे दीर्घ काल तक अमूल्य ग्रंथों का उद्धार कर के साहित्य को समृद्ध करते रहें।

हजारी प्रसाद द्विवेदी,

भूमिका

(१)

तसव्वुफ़

सन्तों तथा आध्यात्मवाद का किसी भी देश-काल में अभाव नहीं रहा। संत सभी देशों में, सभी कालों में तथा सभी के लिये सर्वदा सुलभ रहे। भगवत्कृपा किसी विशेष देश अथवा काल के मनुष्यों की ही संपत्ति नहीं। इसके लिये तो मनुष्य की निष्काम भावनाएं, जिज्ञासा, तथा भक्ति को ही विशेष महत्व दिया गया है।

प्राचीन काल से ही भारतवर्ष में ऐसे संत होते आए हैं जो अपनी अमृतमयी वाणी द्वारा सद्भावों एवं सद्विचारों के प्रचारक रहे हैं। इस वातावरण में इस्लामी तसव्वुफ़ अथवा सूफ़ीमत का रंगरूप और भी उज्ज्वल हो गया और सूफ़ियों ने मानवकल्याण के क्षेत्र में विशेष योग दिया।

बारहवीं शताब्दी ई० के अंत में भारतवर्ष में तुर्कों का राज्य स्थापित होने के समय इस्लामी धर्मशास्त्र के सभी नियमों की पूर्णरूपेण व्याख्या हो चुकी थी तथा सुन्नी धर्मशास्त्र में समय की आवश्यकतानुसार भी कोई परिवर्तन न हो सकता था। तसव्वुफ़ के विख्यात लेखकों ने भी तसव्वुफ़ तथा शरीअत अथवा इस्लामी धर्मशास्त्र के समन्वय द्वारा सूफ़ीमत का मार्ग निर्धारित कर लिया था। क़ुशेरी (मृत्यु १०७२ ई०), हुजवेरी (मृत्यु १०७६ ई०), ग़ज़ाली (मृत्यु ११११ ई०), अब्दुल क़ादिर जीलानी (मृत्यु ११६६ ई०) तथा शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी (मृत्यु १२३४ ई०) अपने प्रसिद्ध ग्रंथों की रचना कर चुके थे; और अपनी प्रभावमयी वाणी द्वारा सूफ़ी मत का मार्ग निर्धारित कर चुके थे। कवियों ने भी सूफी-मत की बड़ी रहस्यमयी व्याख्या की। हकीम सनाई (मृत्यु ११३१ ई०) ने हदीक़ की रचना की जिसमें तसव्वुफ़ की विभिन्न समस्याओं का कविता में समाधान किया। मौलाना जलालुद्दीन रूमी (मृत्यु १२७३ ई०) ने अपनी मसनवी द्वारा सूफ़ीमत की बड़ी गूढ़ व्याख्या की। स्पेन निवासी शेख़ मुहीउद्दीन इब्ने अरबी (मृत्यु १२३९ ई०) ने अत्यधिक ग्रंथों की रचना की। आकलमान

ने उनकी लगभग १५० रचनाओं का उल्लेख किया है किंतु उनके ग्रंथों में फ़ुतूहाते मक्किया तथा .फ़ुसूसुल हेकम को बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने अद्वैतवाद की व्याख्या नवीन ढंग से दर्शन शास्त्र एवं आध्यात्मवाद के आधार पर की। उन्होंने इस सिद्धांत का प्रचार किया कि परमेश्वर के अतिरिक्त ब्रह्मांड में कुछ भी वर्तमान नहीं अथवा जो-कुछ भी वर्तमान है वह सब परमेश्वर का ही रूप है। उनकी गूढ़ व्याख्या से सभी सूफ़ी प्रभावित हुए। इसके द्वारा धार्मिक संकीर्णता कम हो गई और बाद के सूफ़ी जो शरीअत के बाह्य आडंबरों से प्रभावित थे, वे भी किसी-न-किसी प्रकार से शेख़ की शिक्षा को इस्लामी शरीअत से समन्वित कर लेते थे। कुरान के जो वाक्य शरीअत के कट्टर अनुयायी तथा शरीअत के क्षेत्र से बाहर न निकलनेवाले सूफ़ी प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते थे, उन्हीं वाक्यों पर अवलंबित मुहीउद्दीन इब्ने अरबी के शिष्य तथा उनसे सहमत सूफ़ी अपने सिद्धांतों का ताना बाना खड़ा कर देते थे। आध्यात्मिक साधनाओं के लिये शरीअत (इस्लामी धर्म की नियमावली) का निर्धारित पथ साधकों को ईश्वर के ज्ञान के मार्ग में अधिक दूर नहीं ले जा सकता, अतः मुहीउद्दीन इब्ने अरबी की ख्याति तथा उनके सिद्धांतों का पालन करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है और उस पर कोई आश्चर्य न होना चाहिए।

इनके बाद के सूफ़ियों ने अधिकतर इन्हीं सूफ़ियों की रचनाओं को अपने पथ-प्रदर्शन के लिये अपने समक्ष रखा और उनके निर्धारित किए हुए नियमों का पालन किया। उन्होंने अनेक ग्रंथोंकी रचनाएं कीं किंतु वे सबकी सब अधिकांशतः पत्र, समीक्षाएँ तथा टीकाएँ आदि ही हैं, और उन्होंने पिछले ग्रंथों की व्याख्या एवं स्पष्टीकरण ही किया है। कभी कभी कवियों ने तो अपने स्वतंत्र भाव कविता में अवश्य प्रकट किए किंतु वे भी अधिकांशतः शास्त्रीय तसव्वुफ़ से प्रभावित थे और शेख़ मुहीउद्दीन इब्ने अरबी के मार्ग पर अग्रसर हुए हैं।

इस प्रकार तसव्वुफ़ का प्रारंभिक आधार अल्लाह की वार्ता (.क़ुरान) तथा मुहम्मद साहब की वाणी (हदीस) अथवा इस्लामी शरीअत ही है। प्रारंभिक काल के एक सूफ़ी शेख़ अबू बक्र तमिस्तानी का प्रवचन है "मार्ग खुला हुआ है और किताब (.क़ुरान) हमारे समक्ष वर्तमान है[1]।

१. रिसालये क़ुशेरिया, लेखक क़ुशेरी (मिस्र में प्रकाशित), पृ० ३४

.कुरान में लिखा है कि "अपने परमेश्वर का नाम जप तथा प्रत्येक वस्तु से पृथक् होकर उसीकी ओर हो जा।"

अब्बासी, खलीफ़ाओं के राज्य काल (७४६ ई०–१२५८ ई०) में अनुवादों द्वारा सभी प्रसिद्ध धर्मों एवं दर्शनों की समीक्षा होने लगी और इस्लाम का उनके सिद्धांतों से सीधा संपर्क स्थापित हो गया। मुहम्मद साहब (मृत्यु ६३२ ई०) स्वयं किसी पूर्णतया नवीन धर्म के चलाने का दावा न करते थे। .कुरान का वचन है, '(हे मुहम्मद्) तुझसे (इस पुस्तक में) वही कहा गया है जो तुझसे पूर्व पैग़म्बरों (ईश्वर के दूतों) से कहा गया।' तथा 'हे मुसलमानो, कहो कि हम अल्लाह पर तथा जो हमारी ओर उतरा एवं जो इब्राहीम पर, इस्माईल पर तथा इसहाक़ पर, या.कूब पर एवं उनकी संतान पर उतरा, एवं जो मूसा को या ईसा को तथा सब पैग़म्बरों को उनके परमात्मा की ओर से प्रदान हुआ (सब पर) ईमान लाएँ। हम उनमें से किसीमें कुछ भेदभाव नहीं करते और हम उसी परमात्मा के आज्ञाकारी हैं। यदि ये इसी प्रकार स्वीकार करें जिस प्रकार तुमने स्वीकार किया तो उन्होंने सीधा मार्ग पा लिया, और जो इससे बाज़ रहें है वे केवल ज़िद पर हैं।'

अरब विजेताओं ने ईरान, भारत तथा यूरोप के भिन्न भिन्न भागों को अधिकृत तो कर लिया किंतु वहाँ के दर्शन तथा संस्कृति को पराजित न कर सके। इस्लामी अध्यात्मवाद तथा सूफ़ीमत पर भी नव-अफ़लातूनवाद, बौद्धों के विज्ञानवाद तथा वेदांत की अमिट छाप लग गई। जब भारत में सूफ़ी सिलसिले का प्रचार प्रारम्भ हुआ तो तसव्वुफ़ अरबी, भारतीय तथा ईरानी स्रोतों के मिश्रण से इतना गूढ़ बन चुका था कि प्रत्येक उससे अपनी आध्यात्मिक तृप्ति कर सकता था। किन्तु तसव्वुफ़ की सब से बड़ी देन मानव के प्रति सद्भावना तथा सद्विचार हैं।

अबुल हसन हुजवेरी[1] की पुस्तक कश्फ़ुल महजूब को सूफ़ी मत के सिद्धांतों की व्याख्या एवं विस्तृत उल्लेख के लिये बड़ा मान प्राप्त है। भारतवर्ष में इसे तसव्वुफ़ की पहली पुस्तक समझना चाहिए। उन्होंने

---

१. वे ग़ज़नी के हुजवेर नामक ग्राम के निवासी थे और अपने अंतिम जीवन काल में लगभग सभी इस्लामी राज्यों की यात्रा के उपरांत लाहौर में निवास करने लगे थे।

इस पुस्तक के तीसरे अध्याय में तसव्वुफ़ के विषय में इस प्रकार लिखा है—"लोगों ने इस नाम की छानबीन में अत्यधिक तर्क वितर्क किया है और इस विषय पर अनेक पुस्तकों की रचना की गई है। लोगों का विचार है कि वे ऊनी वस्त्र (सूफ़) धारण करने के कारण सूफ़ी कहलाते हैं। कुछ लोगों का मत है कि वे प्रथम पंक्ति (सफ़[1]) में हैं। कुछ लोगों का विचार है कि वे असहाबे सुफ्फ़ा[2] से संबंधित हैं। कुछ लोगों का कथन है कि यह शब्द सफ़ा (शुद्धता) से लिया गया है, किन्तु शब्द-व्युत्पत्ति के अनुसार इनमें से कोई व्याख्या भी संतोषजनक नहीं, यद्यपि सभी मतों की पुष्टि में प्रमाण दिए गए हैं। सफ़ा (शुद्धता) की सभी प्रशंसा करते हैं और यह कदर (अशुद्धता) का उल्टा है। अतः जब इस मत के अनुयायी अपने चरित्र तथा स्वभाव को सुव्यवस्थित कर लेते हैं और आपत्तियों तथा कष्टों से अपने मन को शुद्ध कर लेते हैं तो इनका नाम सूफ़ी पड़ जाता है। ···यदि तुझे सच्चे सूफ़ी की खोज है तो इसको देख ले कि सफ़ा (शुद्धता) की एक जड़ तथा एक शाखा है। इसकी जड़ हृदय से पराये (ग़ैर) का विचार निकाल देना है और इसकी शाखा इस छली संसार (माया) से अपने हृदय को रिक्त कर देना है। यह दोनों गुण सिद्दीक़े अकबर (अबू-बक्र; प्रथम ख़लीफ़ा, मृत्यु ६३४ ई०) में विद्यमान थे। वे ही इस तरीक़े (साधना) वालों के इमाम (नेता) हैं।"

"सूफ़ी ऐसा नाम है जो बड़े बड़े वलियों (संतों) तथा महात्माओं के लिये प्रयुक्त होता है। एक शेख़ ने कहा है कि जो कोई प्रेम द्वारा साफ़ हो जाता है वह शुद्ध हो जाता है और जो कोई प्रियतम में लीन होकर उसके अतिरिक्त सर्वस्व त्याग देता है वह सूफ़ी होता है। तसव्वुफ़ का अर्थ सूफ़ियों को सूर्य से अधिक स्पष्ट होता है और उसके लिये व्याख्या अथवा किसी संकेत की आवश्यकता नहीं होती। इस मत के अनुयायी तीन प्रकार के होते हैं—(१) सूफ़ी, (२) मुतसव्विफ़, (३) मुसतसविफ़। (१) सूफ़ी वह है जो अपने व्यक्तित्व के लिये मृत्यु को प्राप्त हो चुका हो और जो हक़

---

१. वे लोग, जो मुहम्मद साहब के समय में सदैव प्रथम पंक्ति में नमाज़ पढ़ने का प्रयत्न करते थे।

२. मुहम्मद साहब के समय के कुछ बुज़ुर्ग जो नबी की मस्जिद में प्रत्येक समय ईश्वर की उपासना किया करते थे।

(सत्य, ईश्वर) के साथ वर्तमान हो। वह अपनी इंद्रियों के दासत्व से मुक्त हो चुका हो तथा सत्य (ईश्वर) तक पहुँच चुका हो। मुतसव्विफ़ वह है जो मुजाहदे (दमन) द्वारा इस श्रेणी को प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा हो और अपनी जिज्ञासा में अपने व्यवहार को उन लोगों (सूफ़ियों) के उदाहरण द्वारा सन्मार्ग पर लाता हो। मुतसव्विफ़ वह है जो अपने आप को सांसारिक वैभव तथा सम्मान हेतु उन (सूफ़ियों) के समान बनाता हो और इन दोनों वस्तुओं अर्थात् सफ़ा एवं तसव्वुफ़ के विषय में कुछ ज्ञान न रखता हो। कहा गया है कि मुसतसविफ़ सूफ़ियों की दृष्टि में मक्खियों से भी तुच्छ हैं और उसके कार्य लिप्सा के अधीन होते हैं। कुछ अन्य उसे भेड़िये की भाँति समझते हैं। उसकी वाणी पर कोई रोक टोक नहीं होती, कारण कि वह एक ग्रास सड़े हुए गंदे मांस का अभिलाषी होता है। अतः सूफ़ी साहिबे वुसूल (संभोगवाला), मुतसव्विफ़ साहिबे उसूल (सिद्धांत वाला), मुसतसविफ़ साहिबे फ़ज़ूल (बकवादी) होता है। जिसे कुछ भी (ईश्वर का) संभोग प्राप्त हो वह अपनी महत्वाकांक्षा को प्राप्त करके अपने लक्ष्य तक पहुँचने के उपरांत किसी बात की चिंता नहीं करता। जिसे मूल का थोड़ा-सा भी भाग प्राप्त हो जाता है वह तरीक़त (सूफ़ियों का मार्ग) में दृढ़ हो जाता है और तरीक़त के रहस्यों में दृढ़तापूर्वक संलग्न रहता है। किंतु जिसे बकवाद का कोई अंश प्राप्त हो जाता है वह सब वस्तुओं से वंचित होकर रस्म (आडंबर) के द्वार पर बैठ जाता है।"

"इस प्रकार तसव्वुफ़ वासनाओं को त्याग देने का नाम है। यदि कोई वासनाओं को त्यागकर इस त्याग में आनंद लेने लगता है तो यह एक साधारण त्याग है किंतु यदि वासना भी उसे त्याग दे तो वासना का अंत हो जाता है और यह स्थिति वास्तव में मुशाहदे (साक्षात्कार) की होती है। वासना का त्याग मनुष्य की कृति है किंतु वासना का अंत ईश्वर की देन है। मनुष्य का कार्य साधारण तथा लाक्षणिक होता है किंतु ईश्वर का कार्य यथार्थ होता है। सूफ़ी वे लोग हैं जिनकी जीवात्मा मनुष्यता के अंधकार से मुक्त है और जो वासनाओं के कष्टों से तथा कामनाओं से छुटकारा पाकर प्रथम श्रेणी तथा उच्च स्थिति में ईश्वर का साक्षात्कार करके अन्य वस्तुओं से भागते हैं (अबुल हसन 'नूरी'[1] का कथन है कि सूफ़ी वह है

---

१. जुनैद बग़दादी [मृत्यु ९११ ई०] का समकालीन एक सूफ़ी।

जिसके वश में कोई वस्तु न हो और जो स्वयं किसी वस्तु के वश में न हो। यही फ़ना (ईश्वर में विलीन होना) का सार है। इसका अर्थ यह हुआ कि सूफ़ी इस लोक की संपत्ति तथा वैभव से कुछ लाभ नहीं उठाता क्योंकि वह अपने जीवात्मा के वश अथवा अधिकार में नहीं होता। वह दूसरों पर अधिकार करने से बचता है जिससे अन्य लोग भी उसको अपने वश में करने की कामना न कर सकें।'

इब्नुलजल्ला[1] का कथन है, 'तसव्वुफ़ हक़ीक़त (वास्तविकता) है, आडंबर नहीं क्योंकि आडंबर प्राणियों के कार्यों से संबंधित है और हक़ीक़त ईश्वर से। जब तसव्वुफ़ प्राणियों से संबंध न रखने का नाम है तो यह अवश्य ही बिना आडंबर के होने के समान हैं। जुनैद (मृत्यु ९११ ई०) का कथन है कि तसव्वुफ़ की आत्मा परमेश्वर का गुण है और इसका वाह्य रूप मनुष्य का गुण है। सच्चे एकेश्वरवाद में किसी भी मानव-गुण की आवश्यकता नहीं क्योंकि मनुष्य के गुण स्थायी नहीं अपितु रसमी (साधारण) हैं और ईश्वर ही, कर्त्ता है।' अबू हफ़स[2] हद्दाद नीशापुरी का कथन है कि 'तसव्वुफ़ सब-का-सब अनुशासन (अदब) है क्योंकि प्रत्येक समय तथा स्थान एवं दशा के लिये अनुशासन का विधान है।' अबुलहसन का प्रवचन है कि 'तसव्वुफ़ न तो आडंबर (रस्म) है और न विज्ञान, किंतु वह नैतिकता का नाम है क्योंकि यदि यह आडंम्बर होता तो मुजाहदे (दमन) द्वारा प्राप्त हो जाता, यदि तसव्वुफ़ विज्ञान होता तो शिक्षा द्वारा प्राप्त हो जाता। अतः तसव्वुफ़ केवल नैतिकता ही है। मुरतइश[3] का कथन है 'तसव्वुफ़ उत्कृष्ट स्वभाव का नाम है। यह तीन प्रकार का होता है, (१) ईश्वर की ओर अर्थात् निष्ठा के साथ उसके आदेशों का पालन (२) मनुष्य की ओर—बड़ों के प्रति आदर सम्मान, छोटोंपर कृपा तथा बराबरवालों से समानता का व्यवहार और किसी से बदले तथा न्याय की आशा न रखना। (३) अपनी ओर—शैतान तथा वासना के वश में न रहना। जो भी इन तीनों अर्थों के अनुसार अपने आप को ठीक कर लेता है वही उत्कृष्ट स्वभाववाला समझा जाता है।'

---

१. प्रारंभिक काल का एक सूफ़ी।

२. जुनैद का समकालीन एक सूफ़ी।

३. प्रारंभिक काल का एक सूफ़ी।

अबूअली करमीनी का कथन है कि "तसव्वुफ़ उत्कृष्ट नैतिकता का नाम है और उत्कृष्ट कार्य वह है जिसमें बंदा (दास) सभी दशाओं में ईश्वर को पर्याप्त समझता हो अर्थात् ईश्वर की इच्छा से संतुष्ट होता हो।" अबुल हसन नूरी का यह भी कथन है कि "तसव्वुफ़ स्वतंत्रता है और इस प्रकार मनुष्य समस्त कामनाओं से मुक्त हो जाता है। पौरुष यह है कि मनुष्य पुरुषत्व को त्याग दे। तकल्लुफ़ (शिष्टाचार) का त्याग इस प्रकार है कि अपने संबंधियों के विषय में कोई प्रयत्न न करे और उदारता यह है कि संसार को संसारवालों के लिये छोड़ दे[१]।"

तरीक़त के ज्ञानियों के मध्य में फ़क़् (फ़क़ीरी) तथा सफ़वत (शुद्धता) के प्रश्न पर भी मतभेद है। कुछ का विचार है कि फ़क़ीरी शुद्धता से बढ़कर है। उनलोगों का विचार है कि फ़क़् (फ़क़ीरी) पूर्ण रूप से ईश्वर में विलीन होने का नाम है। इसमें किसी विचार का भी अस्तित्व नहीं रहता और शुद्धता केवल फ़क़ीरी का एक मुक़ाम (आध्यात्मिक लक्ष्य) है। जब फ़ना (ईश्वर में विलीन होना) प्राप्त हो जाती है तो सभी मकामों का अंत हो जाता है। जो लोग शुद्धता को फ़क़ीरी से बढ़कर बताते हैं, उनका मत है कि फ़क़् एक ऐसी वस्तु है जो वर्तमान है और इसका नाम रखा जा सकता है किंतु सफ़वत समस्त वर्तमान वस्तुओं से शुद्ध हो जाने (त्याग देने) का नाम है। सफ़ा, ईश्वर में विलीन होने का सार है और फ़क़ीरी बक़ा (अस्तित्व) का सार है। अस्तु फ़क़ीरी मुक़ाम का नाम है किंतु सफ़वत (शुद्धता) पूर्ण होने की दशा का नाम है[२]।

अबुल हसन नूरी का कथन है कि "सूफ़ी बारह गिरोहों में विभाजित हैं जिनमें से दो गिरोह (ईश्वर द्वारा) रद्द कर दिए गए हैं और दस गिरोहों को ईश्वर द्वारा मान्यता प्राप्त है। इनमें से दसों के बड़े ही उत्कृष्ट नियम तथा सिद्धांत हैं। यद्यपि इनके मुजाहदे तथा रयाज़तें (दमन तथा तपस्या) भी भिन्न हैं किन्तु तौहीद (एकेश्वरवाद) एवं शरा के नियमों पर सभी सहमत हैं[3]।" शरीअत के आदेशों का पालन मनुष्य इस भय से करता है कि इसके न करने से क़यामत में दंड भोगना पड़ेगा किंतु तसव्वुफ़ में मनुष्य

---

(१) कशफुल महजूब (लाहौर प्रकाशन १९२३) पृ० २२–३२।

(२) वही, पृ० ४२।

(३) ,, पृ० १३७।

पर ऐसी दशा छा जाती है कि वह उन आदेशों का पालन करने के लिये विवश हो जाता है। वह नमाज़ इसलिये नहीं पढ़ता कि बिना नमाज़ पढ़े उसे दंड भोगना पड़ेगा अपितु इस कारण पढ़ता है कि न पढ़ना उसके वश में ही नहीं। सूफ़ियों का ईश्वर से प्रेम किसी लोभ के कारण नहीं अपितु ईश्वर के लिये होता है। इस प्रकार मुसलमानों के साधारण एकेश्वरवाद से सूफ़ियों का एकेश्वरवाद भिन्न है। सूफ़ी केवल यह नहीं कहता कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई भगवान नहीं अपितु उसका सिद्धांत है कि ईश्वर के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं। दृष्टि विषय तथा चेतना संबंधी संसार केवल मृगतृष्णा हैं। जल में सूर्य की प्रतिच्छाया मेघ द्वारा पूर्णतया समाप्त हो सकती है, वायु का तीव्र झोंका उसमें विघ्न डाल सकता है। वह पूर्णतया सूर्य पर अवलंबित होता है किंतु सूर्य किसी प्रकार प्रतिच्छाया के अधीन नहीं। सूर्य का प्रकाश एक है किंतु दर्पण में, जल में, कण में, उसके रूप परिवर्तित हो जाते हैं। वह कहीं तीव्र हो जाता है कहीं मध्यम और कहीं इतना तेज हो जाता है कि आँखें चौंधियाँ हो जाती हैं। यदि दर्पण जल या कण नष्ट हो जाए तो प्रकाश को कोई हानि नहीं पहुँचती। समस्त ब्रह्मांड एक शरीर के समान है। उसके लाखों करोड़ों भाग हैं। सभी के रूप भिन्न हैं, किन्तु इस बड़े शरीर में भी एक जान है। और वही सब कुछ कर रही है। वह कण कण में विद्यमान है। वह प्रत्येक स्थान पर है और कहीं नहीं है। वह निराकार है, वह किसी विशेष दिशा में नहीं फिर भी सर्वत्र है। सूफ़ियों का अद्वैतवाद यही है।

जब इस सिद्धांत का मनुष्य के हृदय पर पूर्ण रूपेण प्रभाव हो जाता है तो वह आनंद-विभोर हो उठता है। मित्र, शत्रु, मुसलमान, काफ़िर किसी में भी उसे अंतर नहीं देख पड़ता[१]। सादी ने बोस्तान में इब्राहीम

---

(१) सनाई ने अपनी प्रसिद्ध फ़ारसी रचना हदीके. में इस भाव का एक छंद लिखा है: कुफ्र. तथा इस्लाम दोनों "उसी" के मार्ग की ओर अग्रसर हैं; और (दोनों ही) कहते हैं वह एक है और कोई भी (उसके राज्य में) उसका साझी नहीं।

इस छन्द को अबुल फ़ज़ल (मृत्यु १६०२ ई०) ने एक पूजागृह पर जो अकबर के समय में काश्मीर में तैयार कराया गया था, लिखवाया था।

तथा एक अग्नि पूजक की कहानी इस प्रकार लिखी है[२]—"इब्राहीम ने एक अग्निपूजक को भोजन पर से इस कारण हटा दिया कि वह अग्निपूजक था। उसी समय ईश्वर की ओर से फरिश्ते ने आकर ईश्वर का यह संदेश पहुँचाया कि मैंने उसे १०० वर्ष तक जीविका तथा जीवन प्रदान किया और तुम क्षण भर भी उसके साथ न रह सके।" सूफ़ियों का आलिमों (इस्लाम के पंडितों) से सर्वदा विरोध रहा करता था। राज्य के पद अधिकांश आलिमों को प्राप्त होते थे। सूफ़ी सांसारिक अधिकार से कोई संबंध न रखते थे। उन्हें आलिमों के हाथों बड़े कष्ट भोगने पड़ते थे। प्रेम के उन्माद में वे जो कुछ भी कह जाते उस पर कड़ी रोक टोक की जाती। मनसूर हल्लाज (मृत्यु ९१६ ई०) को अनहलक़ (अहं ब्रह्म) कहने पर मृत्यु दंड भोगना पड़ा किंतु सूफ़ी इससे भयभीत न हुए। उन्होंने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया कि मंसूर ने दैवी रहस्य प्रकट कर दिया, अतः उसे यह दंड भोगना पड़ा। उनका मोरचा आलिमों के विरुद्ध चलता रहा। भारतवर्ष में भी सूफ़ियों को अपने स्वतंत्र भावों के कारण कष्ट भोगने पड़े। तुर्कों के राज्यकाल के आरंभ

इस स्थान पर सभी धर्मवाले अपने धर्म के अनुसार पूजा कर सकते थे। फ़ारसी के प्रसिद्ध सूफ़ी कवि जामी (मृत्यु १४९२ ई०) के एक छंद का भाव इस प्रकार है—

हमने कभी तुझे मदिरा के नाम से और
कभी प्याले के नाम से पुकारा।
कभी दाने के नाम से और कभी जाल के नाम से पुकारा।
संसार के पट पर तेरे नाम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं॥
अब हम तुझे किस नाम से पुकारें।

दारा शिकोह (मृत्यु १६५९ ई०) ने भी इसी प्रकार लिखा है।

मैंने एक कण भी सूर्य से पृथक् नहीं देखा।
प्रत्येक जल की बुंद स्वयं ही समुद्र है॥

ईश्वर को किस नाम से पुकारने का साहस किया जा सकता है? जो कोई नाम भी है, वह ईश्वर ही का नाम है।

(२) सादी, गुलिस्ताँ तथा बोस्ताँ के प्रसिद्ध लेखक तथा एक बहुत बड़े सूफ़ी (मृत्यु १२९२ ई०)

में भारतवर्ष के चिश्ती सूफ़ियों ने शासन प्रबंध से अधिकांशतः पृथक् रहने का ही निश्चय कर लिया था किंतु आलिम उन्हें कब शांति से बैठने दे सकते थे। सूफ़ियों की गोष्ठियों का संगीत तथा नृत्य[1] सर्वदा विवाद का विषय रहा। सूफियों को दरबारों में भी बुलाया जाता और उनसे इस विषय पर वाद विवाद करके इस प्रथा को रुकवाने का प्रयत्न किया जाता सूफ़ी भी प्रतिकार के लिये सदैव ही कटिबद्ध रहते थे। वे आलिमों के रो.जे नमाज़ तथा अपने रो.जे नमाज़ तक में बड़ा अंतर समझते थे।

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया (मृत्यु, देहली १३२५ ई०) ने शेख़ जलालुद्दीन तबरेजी की कहानी का उल्लेख करते हुए एक दिन कहा कि जब शेख़ जलालुद्दीन बदायूँ पहुँचे तो कुछ समय तक वहाँ ठहरे। एक दिन किसी कारण से बदायूँ के हाकिम काज़ी कमालुद्दीन जाफ़री के घर पहुँचे। जो सेवक द्वार पर बैठे थे उन्होंने कहा कि 'क़ाज़ी इस समय नमाज़ पढ़ रहे हैं।' शेख़ मुस्करा कर लौट गए और चलते समय कह गए कि 'काजी नमाज़ पढ़ना जानता है ?' शेख़ के लौट जाने पर लोगों ने यह समाचार क़ाज़ी को पहुचाया। दूसरे दिन क़ाज़ी कमालुद्दीन शेख़ की सेवा में पहुँचे और क्षमा याचना करके यह बात पूछी कि, 'आपने यह किस प्रकार कहा कि 'काजी नमाज पढ़ना जानता है ? मैंने नमाज़ तथा उसके नियमों के विषय में अनेक पुस्तकों की रचना की है।' शेख़ ने कहा, 'निःसंदेह फ़क़ीरों की नमाज़ दूसरी होती है तथा आलिमों की दूसरी।' काज़ी ने पूछा कि 'क्या फ़क़ीर रुकू[2] तथा सिजदा[3] किसी दूसरे ढंग से करते हैं अथवा कोई अन्य कुरान पढ़ते हैं।' शेख़ ने उत्तर दिया कि 'आलिमों की नमाज़ इस प्रकार है कि वे अपनी दृष्टि काबे पर रखते हैं और नमाज़ पढ़ते हैं। यदि काबा दृष्टि के समक्ष न हो तो उस ओर मुख कर लेते हैं। आलिमों का क़िबला (काबा) इसके अतिरिक्त नहीं किंतु फ़क़ीर जब तक

---

१. कट्टर आलिमों के अनुसार इस्लाम में इसका पूर्णतया निषेध किया गया है किंतु सूफ़ी इसे बड़ा आवश्यक समझते थे। मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने भी हक़ाय.के हिंदी में संगीत के महत्त्व का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है।

२. रुकू——नमाज में झुककर ईश्वर की प्रशंसा के वाक्य पढ़ना।

३. सिजदा——माथा भूमि पर रखकर ईश्वर की प्रशंसा के वाक्य पढ़ना।

अर्श (ईश्वर का स्थान) न देख लें नमाज़ नहीं पढ़ते।' क़ाज़ी कमालुद्दीन को यद्यपि यह बात बहुत बुरी लगी किंतु उसने कुछ न कहा और वहां से लौट गया। रात्रि में क़ाज़ी को स्वप्न में दिखाया गया कि शेख़ जलालुद्दीन अर्श पर नमाज़ पढ़ रहे हैं। दूसरे दिन दोनों आदमी एक सभा में मिले। शेख़ जलालुद्दीन ने कहा, "आलिमों के कार्य का महत्त्व तथा उनका सम्मान ज्ञात है। उनमें केवल पाठ पढ़ाने की योग्यता होती है। वे चाहे मुदर्रिस हो जांय अथवा क़ाज़ी अथवा सद्रेजहाँ[1] उनको इससे अधिक संमान नहीं प्राप्त हो सकता किंतु दर्वेशों का संमान इससे कहीं अधिक होता है। प्रथम श्रेणी तो वह थी जिसका दर्शन पिछली रात्रि में क़ाज़ी को कराया गया।[2]

इस प्रकार सूफ़ियों ने शरीअत के समानांतर क़ुरान तथा शरीअत की आध्यात्मिक व्याख्या तैकार कर ली। वे बुद्धि की भी बड़ी निंदा करते थे और इश्क़ के महत्त्व पर बड़ा ज़ोर देते थे। शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया का कथन है कि आलिम बुद्धि के समर्थक हैं तथा दर्वेश इश्क़ के। आलिमों की बुद्धि उनके इश्क़ को वश में कर लेती है और फ़क़ीरों का प्रेम बुद्धि को वश में रखता है[3]। सूफ़ी नफ़्स (वासना) को वश में करने को बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य समझते हैं। नफ़्स मनुष्य का सबसे भयंकर शत्रु कहा जाता है और उसके छल को सभी सूफ़ियों ने बड़े स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। नफ़्स पर अधिकार पा लेने के उपरांत ही सूफ़ी अपनी आध्यात्मिक यात्रा में अग्रसर होता है और अपने लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है।

सूफ़ी ऐसे कार्यों को भी अच्छा न समझते थे जिनसे उन्हें प्रसिद्धि प्राप्त हो। शेख़ फ़रीदुद्दीन गंजशकर (पाकपटन अथवा अजोधन, मुल्तान के प्रसिद्ध संत, मृत्यु १२६५ ई०) के गुरु शेख़ क़ुतुबुद्दीन बख़्तियार काकी

---

१. देहली के सुल्तानों के राज्य का सबसे बड़ा धार्मिक अधिकारी। क़ाज़ी (न्यायाधीश) उसके अधीन होते थे।

२. फ़वायदुलफ़वाद--(शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया की वाणी; संकलन कर्त्ता--अमीर हसन; शेख़ के प्रसिद्ध शिष्य (मृत्यु १३३७-३८ ई०) फ़ख़रुलमताबे १२७२ हि० १८५५-५६ ई०) पृ० २४९

३. फ़वायदुलफ़वाद पृ० १४६

(मृत्यु, देहली १२३५ ई०) ने उन्हें चिल्ला[1] खींचने से भी रोक दिया था क्योंकि कुतुबुद्दीन का विचार था कि इससे भी प्रसिद्धि प्राप्त होती है।[2]

इस प्रकार सूफियों ने अपना मार्ग पृथक् निर्धारित कर लिया। यह मार्ग तरीक़त कहलाता है। मनुष्य के जीवन की उपमा यात्रा से दी जाती है और सूफ़ी अथवा साधक की उपमा यात्री से दी जाती है।

तरीक़त के मार्ग में सूफ़ियों को विभिन्न आध्यात्मिक स्थानों को पार करना पड़ता है। तसव्वुफ़ की यह अनेक मंज़िलें अथवा लक्ष्य मकाम कहलाते हैं। साधकों के लिये तोबा[3], .ज़ुहद (संयम) सब्र, रिज़ा (प्रसन्नता पूर्वक संतोष), तव.क्कुल (ईश्वर की इच्छा के अधीन होना) क़नाअत (संतोष) आदि विभिन्न मक़ाम बताए गए हैं। तसव्वुफ़ की पुस्तकों में प्रत्येक की बड़ी रहस्यमयी व्याख्या की गई है। सनाई ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'हदीक़ा' में इन सब पर सविस्तार लिखा है। हुजवेरी के अनुसार मक़ाम उन चीज़ों को कहते हैं जो ईश्वर के मार्ग में रुकावट के रूप में होती हैं। सूफ़ी को उस रुकावट से संबद्ध सभी आदेशों का पालन करना होता है और वह इसके बिना उस स्थान को नहीं छोड़ सकता। इसके विपरीत हाल (दशा) वह है जो ईश्वर की ओर से मनुष्य के अंतःकरण में प्रविष्ट हो और वह न उसे आने से रोक सकता हो और न उसके निकल जाने की दशा में उसे बुला सकता हो। मक़ाम मनुष्य के प्रयत्न पर निर्भर है और हाल वरदान है।[4]

मारेफ़त का तथ्य यह है कि ईश्वर को ही समस्त अधिकार प्राप्त हैं। जब कोई ईश्वर को ही सर्वाधिकार-संपन्न स्वीकार कर लेता है तो उसे मनुष्य से कोई संबंध नहीं रहता[5]। सूफियों के निकट मारेफ़त हृदय को ईश्वर के अतिरिक्त सभी वस्तुओं से हटा लेने का नाम है। सूफ़ियों के निकट इल्म उस प्रत्येक जानकारी का नाम है जिसमें आध्यात्मिक तथ्य न हो। इस

---

१. चालीस दिन तक एकांतवास करके की जानेवाली एक प्रकार की विशेष उपासना।

२. फ़वायदुल फ़वाद पृ० २९।

३. भविष्य में अनुचित कार्य न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा।

४. कश्फ़ुल महजूब, पृष्ठ १४१। ५. वही, पृष्ठ २१२।

६. वही, पृ० २०८।

प्रकार का ज्ञान रखनेवाले को वे आलिम कहते हैं। जो कोई किसी बात के तथ्य से परिचित होता है उसे वे आरिफ़ कहते हैं।[१]

शरीअत तथा हक़ीक़त में भी अंतर बताया गया है। सांसारिक आलिम दोनों में कोई अंतर नहीं समझते। कुछ मुलहिदों (विधर्मी) के गिरोह एक दूसरे का अस्तित्व एक दूसरे के बिना संभव समझते हैं। उनका विचार है कि हक़ीक़त के दृष्टिगत होने के उपरांत शरीअत की आवश्यकता नहीं। हक़ीक़त उस तथ्य का नाम है जिसमें आदम से लेकर संसार के नष्ट होने तक कोई परिवर्तन संभव नहीं, जैसे ईश्वर की मारेफ़त। किंतु शरीअत में परिवर्तन होता रहा। इस प्रकार शरीअत मनुष्य का कर्म है तथा हक़ीक़त ईश्वर की रक्षा है। अतः शरीअत हक़ीक़त के बिना असंभव है और हक़ीक़त का अस्तित्व शरीअत की रक्षा के बिना संभव नहीं।[२]

यात्री (साधक) का परम कर्तव्य है कि वह ब्रह्म के पूर्ण ज्ञान (मारेफ़त) की चेष्टा करता रहे। मनुष्य की आत्मा अपने प्रियतम से पृथक् हो जाने के कारण सर्वदा महामिलन का प्रयत्न करती हुई बताई गई है। तसव्वुफ़ द्वारा हुई आत्मा अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता पाती है। प्रत्येक मनुष्य की स्वाभाविक स्थिति का नाम सूफ़ी लोग नासूत रखते हैं। इस स्थिति में मनुष्य का यह कर्त्तव्य है कि वह शरीअत के आदेशों का पालन करता रहे। आध्यात्मिक यात्रा की यह सब से निम्न श्रेणी है। प्रत्येक जिज्ञासु का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी आध्यात्मिक यात्रा में अग्रसर होता रहे। इस यात्रा की विभिन्न मंज़िलें हैं जिन्हें सूफ़ियों के भिन्न-भिन्न समुदाय अपने-अपने ढंग से व्यक्त करते रहते हैं। साधारणतया सभी सूफ़ी नासूत को प्रथम श्रेणी बताते हैं। दूसरी मंज़िल फ़रिश्तों की अवस्था है जिसे मलकूत या 'देवलोक' कहते हैं। इसके लिये तरीक़त के पथ पर चलना होता है। तीसरी मंज़िल ऐश्वर्य की है जिसके लिये मारेफ़त की आवश्यकता होती है जिसे आलमे

---

१. वही, पृ० २०९।

२. मकतूबाते शरफ़ुद्दीन यहया मुनेरी (कुतुबख़ान-ए इस्लामी-पंजाब), पृष्ठ ७२–७४। शेख़ शरीफ़ुद्दीन बिहार प्रांत से मुनेर कस्बे के निवासी थे। इनकी मृत्यु १३७९ ई० में हुई। इनके पत्रों को बड़ा मान प्राप्त है।

जबरूत कहते हैं। चौथी दशा फ़ना की है जिसमें साधक ईश्वर में लीन हो जाता है। इसके लिये हक़ीक़त की अवस्था बताई गई है।

एक प्रसिद्ध सूफ़ी अज़ीज़ इब्ने (पुत्र) मुहम्मद नसफ़ी ने अपनी पुस्तक मक़सदुल अक़सा में सालिक (साधक) की आध्यात्मिक यात्रा के पथ का इस प्रकार उल्लेख किया है, "सर्व प्रथम जिज्ञासु ईश्वर के ज्ञान के लिये उसकी उपासना में प्रयत्नशील होता है। यह लक्ष्य अथवा मक़ाम उबूदियन अथवा दासत्व कहलाता है।"

उपासना करते करते जब उसमें दैवी प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो वह इश्क़ अथवा परम प्रेम की श्रेणी को प्राप्त हो जाता है। इश्क़ के कारण समस्त कामनाओं एवं वासनाओं का अंत हो जाता है। यह श्रेणी ज़ुहद अथवा त्याग की है। इस लक्ष्य को प्राप्त हो जाने के उपरान्त ईश्वर के ध्यान में लीन रहने के कारण जिज्ञासु मारेफ़त (दैवी ज्ञान) का लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। इस श्रेणी को प्राप्त हो जाने के उपरान्त भी जिज्ञासु की तृष्णा की तृप्ति नहीं होती। वह निरंतर इस पथ पर उन्नति की चेष्टा करता रहता है। वह एक विचित्र उत्तेजना की अवस्था में रहता है। यह अवस्था वज्द अथवा उन्माद की अवस्था कहलाती है। इससे बढ़कर उसे दैवी प्रकाशन द्वारा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त हो जाता है और वह हक़ीक़त को प्राप्त हो जाता है। इस लक्ष्य में अग्रसर होकर उसे वस्ल अथवा संभोग प्राप्त होता है। यह अंतिम श्रेणी है। इसके उपरांत जिज्ञासु फ़ना अथवा ईश्वर में लीन हो जाता है।

शरीअत, तरीकत, मारेफ़त तथा हक़ीक़त का वर्गीकरण कर्म, भक्ति तथा ज्ञान मार्ग के समान नहीं किया जा सकता अपितु शरीअत सूफ़ी के लिये तरीक़त मारेफ़त तथा हक़ीक़त सभी मार्गों में आवश्यक होती है। हक़ीक़त प्राप्त करने के लिये प्रायः सभी साधनाओं की आवश्यकता नहीं होती। कभी कभी किसी जिज्ञासु को किसी वली (संत) की साधारण कृपा तुरंत अंतिम श्रेणी तक पहुँचा देती है। कभी कभी जीवन पर्यंत उपासना करने से भी कुछ प्राप्त नहीं होता। उन्माद की अवस्था में साधक वाह्य रूप से शरा की अवहेलना करता हुआ दीख पड़ता है किंतु सूफ़ियों के अनुसार वह ऐसे रहस्य से परिचित हो जाता है कि ईश्वर के निकट वह अवहेलना अवहेलना नहीं रहती।

हुजवेरी ने मुरीद (चेला) बनने के नियमों पर विस्तार से लिखा है। वह लिखता है 'जब कोई मुरीद होना चाहता है तो उसे तीन वर्ष तक तीन आध्यात्मिक अनुशासनों का अर्थ सिखाया जाता है। यदि वह इस अनुशासन पर दृढ़ रहा तो ठीक है अन्यथा उसे तरीक़त (तसव्वुफ़ का मार्ग) के लिये नहीं स्वीकार किया जाता। प्रथम वर्ष उसे प्रणियों की सेवा करनी पड़ती है। दूसरा वर्ष उसे ईश्वर की सेवा में व्यतीत करना पड़ता है और तीसरे वर्ष अपने मन पर नियंत्रण रखना पड़ता है। प्राणियों की सेवा वह उसी समय कर सकता है जब वह अपने आपको दास और अन्य प्राणियों को स्वामी समझे अर्थात् वह उन्हें बिना किसी भेद भाव के अपने आप से उत्कृष्ट समझे और सभी की समान रूप से सेवा करना अपना कर्तव्य समझे और किसी भी प्रकार से वह जिन लोगों की सेवा करता है उन्हें अपने आपसे घट कर न समझे। ईश्वर की सेवा वह उसी समय कर सकता है जब वह इस लोक के एवं परलोक संबंधी सभी स्वार्थ त्याग दे और ईश्वर की उपासना केवल उसी के लिये करे। कारण कि जो कोई किसी अन्य वस्तु के लिये ईश्वर की उपासना करता है वह अपनी ही पूजा करता है, ईश्वर की नहीं। अपने हृदय की रक्षा वह उसी समय कर सकता है जब उसके विचार संगठित हों और इच्छाएँ उसके हृदय से पूर्णतया निकल चुकी हों। जब वह अपने हृदय की असावधानी की समस्त दशाओं से रक्षा कर लेता है और जब उसमें (मुरीद में) यह तीनों गुण उत्पन्न हो जाते हैं तभी वह सच्चे सूफ़ी की भाँति ख़िर्क़ा (गुदड़ी) धारण करने योग्य हो जाता है।

मुर्शिद (गुरु) को मुरीद (चेला) के विषय में पूर्ण ज्ञान होना परम आवश्यक है। यदि वह जानता हो कि वह किसी दिन पृथक् हो जायगा तो उसको पहले ही से मुरीद न करे और यदि वह समझे कि यह दृढ़ रहेगा तो फिर उसे आध्यात्मिक भोजन प्रदान करे। सूफ़ी शेख़ मनुष्य की आत्मा के उपचारक होते हैं। यदि उपचारक रोगी के रोग से अनभिज्ञ होता है तो वह अपने उपचार द्वारा उसकी हत्या कर देता है।

भारतवर्ष में तसव्वुफ़

भारतवर्ष में तुर्कों का राज्य स्थापित होने के पूर्व (१२०६ ई०) सूफ़ियों के भिन्न भिन्न संप्रदाय अथवा सिलसिले बन चुके थे जिनमें सिलसिल-ए-.ख्वाजगान, क़ाद्रिया, चिश्तिया तथा सुहरवर्दिया मुख्य थे। सिलसिल-ए-.ख्वाजगान के सबसे प्रसिद्ध प्रचारक .ख्वाजा मुहम्मद अताएसवी थे जिनकी मृत्यु ११६६ ई० में हुई। .ख्वाजा बहाउद्दीन न.क्श बन्द (मृत्यु १३८९ ई०) ने इस सिलसिले को विशेष उन्नति दी और उनके पश्चात् यह सिलसिला न.क्शबंदिया कहलाने लगा। भारतवर्ष में इसका प्रचार .ख्वाजा बाक़ी बिल्लाह (मृत्यु १६०३ ई०) द्वारा हुआ। क़ाद्रिया सिलसिला शेख़ मुहीउद्दीन, अब्दुल क़ादिर जीलानी (मृत्यु ११६६ ई०) ने चलाया। चिश्तिया सिलसिले का श्रीगणेश शेख़ अबू इसहाक़ शामी (मृत्यु ९४० ई०) द्वारा हुआ किन्तु .ख्वाजा मुईनुद्दीन सहन सिज़्ज़ी (मृत्यु १२३५ ई०) ने इसका प्रचार भारतवर्ष में किया। सुहरवर्दिया सिलसिले के सबसे बड़े प्रचारक शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी (मृत्यु १२३४ ई०) हैं। अवार .फुल मआरिफ़ इन्हींकी रचना है। उनके बहुत से चेले हिन्दुस्तान पहुँचे किन्तु शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया (मृत्यु १२६६ ई०) के प्रयत्नों से इस सिलसिले की भारतवर्ष में बड़ी उन्नति हुई। भारतवर्ष में तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी ईस्वीमें चिश्तिया और सुहरवर्दिया सिलसिलों ने ही मुख्य कार्य किया।[1]

हिन्दुस्तान में कार्य करने के कारण इन्हें यहाँ की हिन्दू जनता के भी सम्पर्क में आना पड़ता था। यद्यपि इनका कार्य-क्षेत्र अधिकतर सुन्नी मुसलमानों तक ही सीमित था, किन्तु हिन्दू लोग भी इनसे मिलते जुलते थे और इनकी उदारता के कारण इन्हें भी इस्लाम के समझाने का अवसर मिलता था। सूफ़ी भी योगियों के सम्पर्क में आते थे। शेख़ मुईनुद्दीन चिश्ती के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्होंने स्थानीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया

---

१. इन दोनों सिलसिलों का इतिहास हिन्दी में इस पुस्तक के लेखक द्वारा तैयार हो चुका है और आशा है कि शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा।

था। शेख़ हमादुद्दीन नागौरी (मृत्यु १२७३ ई०) को अरबी फ़ारसी के साथ साथ हिंदी का भी अच्छा ज्ञान था। शेख़ फ़रीदुद्दीन मसऊद गंज शकर (मृत्यु १२६५ ई०) की सेवा में जिन्होंने पंजाब में चिश्तिया सिलसिले का प्रचार किया, हिंदू योगी भी आते थे। शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने एक अवसर पर किसी योगी से नफ़्स के विषय में उसके धर्म के आदेशों पर विचार विमर्श किया था।[1] एक अन्य अवसर पर शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया शेख़ फ़रीदुद्दीन की सेवा में उपस्थित थे। वहां एक योगी भी विद्यमान थे। इस विषय पर वार्ता होने लगी कि इस युग के बहुतसे पुत्र बिना किसी ज़ौक (आस्वादन) के उत्पन्न होते हैं क्योंकि लोगों को मैथुन के विषय में कोई ज्ञान नहीं। तत्पश्चात् योगी ने कहा कि एक मास में ३० दिन होते हैं और प्रत्येक दिन की विशेषता पृथक् है जैसे पहले दिन के मैथुन के परिणाम-स्वरूप ऐसा पुत्र पैदा होता है और दूसरे दिन के मैथुन से ऐसा। इसी प्रकार उसने प्रत्येक दिन की विशेषता की चर्चा की। शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने प्रत्येक दिन के विषय में पूछ कर वे बातें याद कर लीं। तत्पश्चात् उन्होंने योगी से कहा 'अच्छा मैंने जो कुछ याद कर लिया है उसे सुनो'।[2] 'अमीर ख़ुसरो (मृत्यु १३२५ ई०) ने भी हिंदुओं के धर्म तथा उनकी विशेषता के विषय में नुह सिपेहर में बड़े विस्तार से लिखा है।[3]

शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया अमीर ख़ुसरो के साथ अपनी खान काह की छत पर टहल रहे थे। आपने देखा कि पास ही कुछ हिंदू मूर्ति-पूजा कर रहे हैं। आपने कहा "प्रत्येक क़ौमवालों का एक मार्ग, धर्म तथा क़िबला होता है"।[4]

फ़वायदुल फ़वाद के लेखक अमीर हसन को कुछ समय तक वेतन न मिला। वे व्याकुल होकर शेख़ निजामुद्दीन के पास गए। शेख़ निज़ामुद्दीन औलिया ने उन्हें समझाने के लिये एक ब्राह्मण की कहानी सुनाई कि एक ब्राह्मण

---

(१) फ़वायदुल फ़वाद, पृ० ९७

(२) वही, पृ० २५७-५८

(३) नुह सिपेहर (ख़लजी कालीन भारत, १९५५ ई०), तीसरा सिपेहर, पृ० १७८-१८०

(४) तुज़ुके जहांगीरी (ग़ाज़ीपुर, १८६३ ई०), पृ० ८१

बड़ा धनी था। उसके नगर के हाकिम ने उसकी धन-सम्पत्ति ज़ब्त कर ली। तत्पश्चात् वह ब्राह्मण निर्धन हो गया। एक दिन वह एक मार्ग पर जा रहा था। उसके एक मित्र ने आगे बढ़ कर पूछा, 'तेरी क्या दशा है ?' उसने कहा, 'बहुत अच्छी'। उस मित्र ने कहा कि 'तेरा सब कुछ तो छिन गया, अब प्रसन्नता किस बात की ? उसने कहा, 'मेरा जनेऊ मेरे पास है'। अमीरहसन ने इससे यह शिक्षा ग्रहण की कि वेतन के न मिलने अथवा धन-सम्पत्ति के प्राप्त न होने का चिंता न करनी चाहिए। यदि समस्त संसार भी हाथ से निकल जाय तो भी कुछ चिंता नहीं। ईश्वर से सदैव प्रेम करना चाहिए।[1] इब्ने बतूता ने मुहम्मद तुग़लक़ की योगियों के प्रति रुचि एवं उनके कर्तव्यों का बड़े विस्तार से उल्लेख किया है।

धीरे धीरे एकांतवास तथा रियाज़त (तपस्या) में योगियों के सिद्धांतों का भी प्रयोग होने लगा। शेख़ मुहम्मद ग़ौस ग्वालियरी (मृत्यु १५६२ ई०) ने चुनार की पहाड़ियों के अंचल में १२ वर्ष तक घोर तपस्या (रियाज़त) की। वे गुफाओं में निवास करते थे और वृक्षों के पत्तों के भोजन करते थे। दावते अस्मा (भूत प्रेत का अपसरण) में उन्होंने बड़ी दक्षता प्राप्त कर ली थी। हुमायूँ बादशाह (मृत्यु १५५६ ई०) उनका बहुत बड़ा भक्त था। ९६६ हि० (१५५८-५९ ई०) में मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी ने आगरे में उन्हें दूर से देखा। वे सवार थे और लोगों की भीड़ उनके चारों ओर एकत्रित थी। किसीके लिये भी उस भीड़ का पार करना संभव न था दाहिने और बाँयें लोगों के सलाम का उत्तर देते देते उनके सिर को क्षणभर के लिये आराम न मिलता था। उस दशा में उनकी पीठ झुकने के कारण घोड़े की काठी से मिल जाती थी। वे जिस किसी को भी देखते उसी का सम्मान करते। यहाँ तक कि काफ़िरों का भी अत्यधिक सम्मान करते थे। ९७० हि० (१५६२ ई०) में ९० वर्ष की अवस्था पार करके उनका देहावसान आगरे में हो गया।[2]

बहरुल हयात[3] शेख़ मुहम्मद ग़ौस की बड़ी ही महत्वपूर्ण कृति है। वास्तव में यह "अमृत कुंड" का अनुवाद है। शेख़ ग़ौस ने इस पुस्तक

---

(१) फ़वायदुल फ़वाद, पृ० ६५

(२) मुन्तख़ब तवारीख़, भाग ३ (कलकत्ता १८६४-६९), पृ० ४-६

(३) यह पुस्तक रज़वी मुद्रणालय, देहली से १३११ हि० (१८९४ ई०) में प्रकाशित हुई थी।

की प्रस्तावना में लिखा है कि मुसलमानों में इस पुस्तक के प्रचार का यह कारण है कि जब सुल्तान अलाउद्दीन[1] ने बंगाल में प्रदेश विजित किया और वहाँ इस्लाम का प्रचार हुआ तो इसकी सूचना कामरूप पहुँची। उस प्रदेश का एक प्रसिद्ध ज्ञानी जिसका नाम मकामा योगी था और जो योग में बड़ा दक्ष था आलिमों से शास्त्रार्थ करने के लिये लखनौती गया। शुक्रवार को वह जामा मस्जिद पहुँचा और वहाँ लोगों से आलिमों की गोष्ठियों का पता लगाया। सभी ने क़ाज़ी रुक्नुद्दीन समरक़ंदी की गोष्ठी का नाम बताया। वह उस गोष्ठी में पहुँचा और उससे पूछा "तुम किस की पूजा करते हो ?" उन लोगों ने उत्तर दिया, "हम निर्दोष ईश्वर की पूजा करते हैं" उसने पूछा, "तुम्हारे इस्लाम धर्म का चलाने वाला कौन है ?" उत्तर मिला "मुहम्मद" योगी ने पूछा तुम्हारे इमाम (धर्म चलानेवाले) ने आत्मा के विषय में क्या बताया है ?" आलिमों ने कहा, आत्मा को ईश्वर का आदेश बताया गया है" योगी ने कहा, "निस्संदेह मैंने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश की पुस्तकों में इसी प्रकार देखा है।" तत्पश्चात् वह मुसलमान हो गया और इस्लाम का ज्ञान प्राप्त करने में व्यस्त हो गया। थोड़े समय में वह सभी बातों में दक्ष हो गया। इसके उपरांत उसने इस पुस्तक अमृत कुंड के ज्ञान को क़ाज़ी को बताया। उन्होंने इसका हिंदी (संस्कृत) से अरबी में भाषान्तर किया और इसे ३० अध्यायों में विभाजित किया। किसीने इसका फ़ारसी भाषांतर दस अध्यायों में किया था किंतु टूटे फूटे शब्द हिंदी से इस प्रकार मिला जुला कर लिखे थे कि किसी की समझ में कुछ न आता था। हज़रत ग़ौसुद्दीन (ग्वालियरी) ने कामरूप में स्वयं कुछ दिन रहकर इस ज्ञान की खोज की थी। क़स्बा भड़ौंच के निवासियों के आग्रह पर इस दास (कदाचित् शेख़ ग़ौस के भाई शेख़ बहलोल, मृत्यु १५३७ ई०) को उनका यह आदेश हुआ है कि इस पुस्तक में बहुतसे ज्ञानों का उल्लेख हुआ है किन्तु इसके वाक्यों में कोई संबंध नहीं। अतः इसे पुनः लिखो। इस कारण जो कुछ वे बोलते जाते थे वह सब लिख लिया गया और इस पुस्तक का नाम "बहरुल हयात" रखा गया। इस पुस्तक की विषय सूची इस प्रकार है।

प्रस्तावना—वजूद (ईश्वर के अस्तित्व) के अनादि होने की विशेषता।

अध्याय १—आलमें सग़ीर (मनुष्य) का परिचय तथा नक्षत्रों का प्रभाव।

---

(१) अली मर्दान अलाउद्दीन ख़लजी १२०८–१२१२ ई०

अध्याय २—आलमों की विशेषता का परिचय। इस अध्याय में दम (प्राणायाम) का सविस्तार वर्णन किया गया है। श्वास तथा इंद्रियों को वश में रखने की चर्चा की गई है। मनुष्य के स्वास्थ्य, विभिन्न उपचारों तथा संतानोत्पत्ति की भी चर्चा की गई है।

अध्याय ३—अंतः करण का परिचय तथा उसमें आनेवाली प्रेरणाओं एवं विचारों का उल्लेख।

अध्याय ४—रियाज़त (तपस्या) का परिचय तथा विभिन्न आसनों की विधि।

अध्याय ५ – मनुष्य के जन्म का परिचय तथा दम (प्राणायाम) की किस्में और उनकी विशेषता।

अध्याय ६—शरीर का परिचय तथा उसकी विशेषता।

अध्याय ७—वहम (कल्पना) का परिचय।

अध्याय ८—शरीर के रोग तथा उनका परिचय।

अध्याय ९—तसख़ीरात (पराजय)।

अध्याय १०—ब्रह्मांड की उत्पत्ति, सत्त्व, रजस्, तमस्, इन तीन गुणों का परिचय।

इस पुस्तक के अध्ययन तथा शेख निज़ामुद्दीन औलिया एवं योगी की इस विषय पर जो वार्ता हुई उससे पता चलता है कि आरंभ ही से सूफ़ी कुछ विषयों में योगियों के ज्ञान तथा योग की क्रियाओं को बड़ा महत्त्व देने लगे थे और योग को बड़ा उच्च कोटि का ज्ञान समझते थे।

सूफ़ियों ने हिंदी को जिसे हिंदवी कहा जाता था बड़ा प्रोत्साहन दिया। जन साधारण से अधिक संपर्क रहने के कारण उन्हें हिंदी दोहे आदि सुनने का भी अधिक अवसर मिलता था। अमीर ख़ुसरो ने (खड़ी बोली) हिंदी में भी कविता की। ख़ालिक़बारी की रचना द्वारा उन्होंने फ़ारसी अरबी तथा हिंदी के पर्यायवाची शब्दों का कोष प्रस्तुत किया। पहेलियों मुकुरियों तथा दो-सख़ुनों द्वारा उन्होंने कौतूहल तथा विनोद की सृष्टि की है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "चारण कालीन रक्तरंजित इतिहास में जब पश्चिम के चारणों की डिंगल कविता उद्धत स्वरों में गूंज रही थी और उसकी प्रतिध्वनि और भी उग्र थी, पूर्व में गोरखनाथ की धार्मिक प्रवृत्ति आत्म-शासन की शिक्षा दे रही थी, उस काल में अमीर ख़ुसरो की विनोदपूर्ण कविता हिंदी

साहित्य के इतिहास की एक निधि है। मनोरंजन और रसिकता का अवतार यह (कवि अमीर खुसरो) अपनी मौलिकता के लिये सदैव स्मरणीय रहेगा[१]।'

ख़ुसरो के अतिरिक्त लगभग इसी समय में अब्दुर्रहमान तथा मुल्ला दाऊद नामक दो अन्य मुसलमान कवि हुए जिन्हें संधि-काल के उत्तर काल के महान् कवियों की उपाधि दी जा सकती है। भक्ति काल के कवियों की वाणी तथा सूफ़ियों की ग़ज़लों में भाषा के अतिरिक्त कोई अंतर न था। दोनों दो भिन्न-भिन्न स्रोतों से चलीं किंतु मार्ग एक ही था और परिणाम भी भिन्न न था। चौदहवीं शताब्दी ईसवी के अंत के तथा पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के सूफ़ी हिंदी कविता में विशेष आनंद लेते थे।

समा (संगीत) को चिश्ती सूफ़ियों की साधना में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था इस प्रश्न पर वह कट्टर आलिमों तथा राज्य के अधिकारियों से भी टक्कर लेने में न डरते थे। यद्यपि शेख़ शिहाबुद्दीन सुहरवर्दी तथा हुजवेरी ने अपनी पुस्तकों में समा के नियम निर्धारित कर दिए थे और बाद के सूफ़ियों ने भी उन नियमों के पालन करने तथा कराने का प्रयत्न किया किंतु भावावेश में किसी नियम का पालन करना या कराना कठिन है। अमीर ख़ुसरो ने हिंदी रागों का भी आविष्कार किया और प्रचलित रागों में भी संशोधन किए। इस प्रकार समा में भी हिंदी गानों को प्रविष्ट कर दिया गया। कभी-कभी हिंदी राग तो फ़ारसी ग़ज़लों से कहीं अधिक प्रभावशाली हो जाते थे। क़ुरान की आयतें भी हिंदी रागों में गाई जाने लगी थीं[२]।

किसी ने शुक्रवार १६ रमज़ान ८०२ हि० (१४ मई १४०० ई०) को ख़्वाजा गेसू दराज़ सैयिद मुहम्मद हुसेनी (मृ० १४२२ ई०) से प्रश्न किया कि "क्या कारण है कि सूफ़ियों को हिंदवी में अत्यधिक आनंद आता है और ग़ज़ल में उतना आनंद नहीं प्राप्त होता ?" गेसू दराज़ ने उत्तर दिया कि प्रत्येक की विशेषता पृथक् होती है और वह दूसरे में नहीं पाई जाती। हिंदवी बड़ी ही कोमल तथा स्वच्छ होती है और उसमें खोल कर बात कही जा

---

(१) हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, (प्रयाग, १९४८) पृ० १८७।

(२) मआसेरुल केराम, लेखक मीर ग़ुलाम अली आज़ाद (आगरा १९१० ई०), पृ० ३८–३९।

सकती है। इसका संगीत भी बड़ा कोमल तथा स्वच्छ होता है जिससे विलाप उत्पन्न होता है और मनुष्य की दीनता, नम्रता तथा दोषों की ओर संकेत होता है। इसी कारण आवश्यकता वश सूफ़ियों को उस ओर अधिक आकर्षण हुआ[1]।

इन हिंदी कविताओं में भारतीय तथा हिंदू संस्कार मूल रूप से विद्यमान रहते थे। हक़ायके हिंदी के अध्ययन से पता चलता है कि ध्रुवपद तथा विष्णुपद को सबसे अधिक प्रसिद्धि प्राप्त थी। श्री कृष्ण तथा राधा की प्रेम कथायें सूफ़ियों को भी अलौकिक रहस्य से परिपूर्ण ज्ञात होती थीं। इन कविताओं का "समा" में गाया जाना आलिमों को तो अच्छा लगता ही न होगा, कदाचित् कुछ सूफ़ी भी इन हिंदी गानों की कटु आलोचना करते होंगे, अतः इन कविताओं का आध्यात्मिक रहस्य बताना भी परम आवश्यक-सा हो गया। अब्दुल वाहिद सूफ़ी ने हक़ाएक़े हिंदी में उन ही शब्दों के रहस्य की बड़ी गूढ़ व्याख्या की है जो उस समय हिंदी गानों में प्रयोग में आते थे।

---

(१) जमावे उल-किलम—ख़्वाजा गेसू दराज़ सैयिद मुहम्मद अकबर हुसेनी की बाणी; इन्तिज़ामी प्रेस, उस्मानगंज द्वारा मुद्रित। १३५६ हि० (१९३७-३८ ई०) पृ० १७२-७३।

मीर अब्दुलवाहिद बिलग्रामी

मीर अब्दुल वाहिद बिलग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम सैयिद क़ुतुबुद्दीन था। सैयिद क़ुतुबुद्दीन सैयिद माहरू के पुत्र तथा सैयिद शाहबुद के पौत्र थे। सैयिद बुढ को मआसिरुल केराम[1] में एक बहुत बड़ा सूफ़ी लिखा गया है[2] और इस पूरे वंश को सूफ़ी संप्रदाय में बड़ा ही प्रतिष्ठित बताया गया है। सैयिद माहरू बिलग्राम से सरा क़स्बे को चले गए और वहीं निवास करने लगे। इन्हें अपने समकालीन बादशाह से सरा तथा ८४ अन्य ग्राम इनाम[3] में प्राप्त हो गए! कुछ समय उपरांत उनका वहां के जमींदारों से युद्ध हो गया और सैयिद तथा उनकी कुछ संतान मार डाली गई। वे सरा में दफ़न हैं। उन्होंने माहरू खेड़ा बसाया और वहां एक छोटा-सा क़िला निर्माण किया। उनके अन्य आश्रित सरा से गौ घाट पहुँच कर वहीं निवास करने लगे किंतु उन लोगों का वहां भी रहना संभव न हो सका और वे सांडी में जो बिलग्राम से १४ कोस दूर है निवास करने लगे। सैयिद माहरू की संतान में से किसी ने सांसारिक शिक्षा प्राप्त की और समकालीन बादशाह ने उन्हें बाड़ी क़स्बे का क़ाज़ी नियुक्त कर दिया। वे लोग बाड़ी में पहुँच कर वहीं निवास करने लगे और अकबर (१५५६ ई०–१६०५ ई०) के राज्यकाल में बाड़ी क़स्बा उन्हें इनाम में प्राप्त हो गया।

मीर अब्दुल वाहिद, तीसरे पुत्र की, जो सांडी में रह गए थे, संतान हैं। इनका जन्म ९१५ हि०(१५०९–१० ई०) के लगभग हुआ था।[4] बिलग्राम

---

(१) मआसिरुल केराम, लेखक मीर गुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी (मृत्यु १७८६ ई०)। इस पुस्तक में बिलग्राम के सूफियों तथा कवियों का इतिहास है।

(२) मआसेरुल केराम, मुफ़ीदआम मुद्रणालय आगरा (१९१७ ई०) पृ० २२–२४

(३) वह भूमि जो आलिमों आदि को सहायता के रूप में प्रदान की जाती थी।

(४) ९३३ हि० में जब उन के गुरु की मृत्यु हुई तो उनकी अवस्था १८ वर्ष की थी (मआसेरुल केराम पृ० २६)।

में अपनी पुत्री का विवाह होने के पश्चात् मीर अब्दुल वाहिद भी बिलग्राम चले गए और वहीं निवास करने लगे। सर्वप्रथम मैदान पुरा मुहल्ले में निवास प्रारम्भ किया, तत्पश्चात् सलहदाताल के तट पर पहुँच कर निवास करने लगे।

मीर का विवाह कन्नौज में हुआ था और कुछ समय तक उन्होंने वहीं निवास किया। मुल्ला अब्दुल क़ादिर की भेंट उनसे (९७७ हि० १५६९-७० ई०) क़न्नौज ही में हुई थी। नफ़ायसुलमआसिर[1] के लेखक मीर अलाउद्दौला, मीर यहया सैफ़ी क़ज़वीनी तथा गुलज़ोर अबरार[2] के लेखक शेख़ मुहम्मद ग़ौसी शत्तारी ने मीर को कन्नौज का सैयिद बताया है।

सर्वप्रथम मीर ने शेख़ सफ़ीउद्दीन साईपुरी से बैअत (दीक्षा) प्राप्त की। शेख़ उनसे बड़ा स्नेह करते थे। जब मीर १८ वर्ष के थे तो शेख़ सफ़ी मृत्यु को प्राप्त हो गए। तत्पश्चात् वे शेख़ हुसेन के मुरीद हो गए शेख़ हुसेन मीर के पिता के बहुत बड़े मित्र थे। वे मीर पर बड़ी कृपा दृष्टि रखते थे और कहा करते थे कि यह मेरे मित्र का पुत्र है। शेख़ ने मीर को अपना ख़लीफ़ा भी बनाया।[3]

मीर के गुरु—शेख़ सफ़ी अपने समय के बहुत बड़े सूफ़ी थे और शेख़ सादुद्दीन ख़ैराबादी के मुरीद थे। उन्होंने अपने गुरु की अत्यधिक सेवा की। वे उनके प्रत्येक आदेश का बड़ी संलग्नता से पालन करते थे। अब्दुल वाहिद ने लिखा है, "शेख़ साद की खानक़ाह में सफ़या नामक एक ग़ुलाम बच्चा था। जब कभी उसे कोई पुकारता, शेख़ सफ़ी उत्तर देते और उपस्थित हो जाते और कभी यह न सोचते कि उन्हें कोई भी सफ़या के नाम से न पुकारेगा।[4]

---

(१) इस पुस्तक की रचना लगभग १५८९-९० ई० में हुई। इस बहुमूल्य पुस्तक की एक प्रति अलीगढ़ विश्वविद्यालय और एक प्रति रामपुर रिज़ा पुस्तकालय में है। लेखक ने इसका फ़ारसी संस्करण तैयार किया है।

(२) इस पुस्तक की रचना जहाँगीर के राज्यकाल (१६०५ ई० १६२७ ई०) में हुई।

(३) सब-ए-सनाबिल; मआसेरुल केराम, पृ० ३६-३९

(४) सब-ए-सनाबिल; मआसेरुल केराम, पृ० ३३-३६

शेख़ सफ़ी की मृत्यु १६ मुहर्रम ६३३ हि० (१५२६ ई०) को हुई। मीर अब्दुल वाहिद द्वारा कहे गए "शेख़ पाक"[1] शब्द के अक्षरों से इस तिथि का पता चला है।

शेख़ हुसेन शेख़ सफ़ीउद्दीन साईपुरी के सबसे बड़े ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) थे। सर्वप्रथम वे अपने समय के बड़े प्रतिष्ठित धनी लोगों में से थे और अत्यधिक दान किया करते थे। धनुर्विद्या, गेंद खेलना आदि की दक्षता जो सैनिकों, अमीरों तथा बादशाहों के लिये आवश्यक है, उन्हें प्राप्त थी। उन्होंने ईश्वर-प्रेम से विवश होकर सब कुछ त्याग दिया और सांसारिक बंधनों से मुक्त हो गए। समस्त संपत्ति लुटा दी और एक वृक्ष के नीचे पहुँचकर मूर्च्छा की अवस्था में पड़े रहने लगे। इसी दशा में हज के लिये चल खड़े हुए। एक रात्रि में स्वप्न में मुहम्मद साहब से हिंदुस्तान लौटने तथा शेख़ सफ़ी से दीक्षा (बैअत) प्राप्त करने का आदेश पाकर हिंदुस्तान वापिस हुए और शेख़ सफ़ी के द्वार पर पहुँचे। शेख़ सफ़ी के सेवक ने निकल कर पूछा "शेख़ हुसेन कौन है ?" शेख़ हुसेन ने उत्तर दिया, "मेरा नाम हुसेन है किंतु मैं शेख़ नहीं है।" सेवक ने लौट कर शेख़ सफ़ी को सूचना दी। शेख़ सफ़ी ने कहा 'वही है'। सेवक वापस आकर शेख़ हुसेन को शेख़ सफ़ी की सेवा में ले गया। शेख़ सफ़ी ने बड़े स्नेह से अपनी टोपी (कुलाह) शेख़ हुसेन को पहनाई और अपनी ख़ानक़ाह में रहने को स्थान दिया।[2]

मीर अब्दुल वाहिद ने सब-ए-सनाबिल में लिखा है कि शेख़ हुसेन को समस्त धन संपत्ति त्याग कर ईश्वरोपासना में इस सीमा तक लीन देख कर लोग आश्चर्य किया करते थे। शेख़ कहा करते थे कि यदि ईश्वर दीनों पर इतनी कृपा दृष्टि न रखता होता तो इस दीन को उस मुर्दार (संसार) से मुक्ति क्यों दिलाता और संतोष की संपत्ति क्यों प्रदान करता। कुछ लोगों को वे उत्तर देते, "मुझे ईश्वर का बड़ा ही कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने मेरा नाम धनी लोगों की सूची से निकाल कर फ़क़ीरों की सूची में लिख

---

(१) शीन=३०१, ये=१०, ख़े=६००, पे=२, अलिफ़=१, क़ाफ़=२०=९३३

(२) गुलज़ारे अबरार।

मुआसेरुल केराम, पृ० ३६–३७।

दिया है। जब वे अपनी अवस्था के अंत को प्राप्त होने लगे तो वे कभी-कभी कहा करते थे कि मेरी अभिलाषा यह है कि कोई अच्छे स्वर वाला यह आयत कोरी अथवा जैतश्री राग में जो कि हिंदी राग है, गा दे और मैं प्राण त्याग दूँ।"

कहा जाता है कि जब शेख़ का मृत्यु-काल निकट आ गया तो वे कोरी मस्जिद में चले गए और वहाँ एक भवन निर्माण कराने लगे। वे मित्रों से विदा हुआ करते थे, इससे लोगों को आश्चर्य होता था। जब भवन पूरा हो गया तो उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में प्राण त्याग दिए। उनकी मृत्यु ८७६ हि० (१५६८–६६ ई०) में हुई[1]।

शेख़ हुसेन के गुरु शेख़ सफ़ी उद्दीन ने भी मीर अब्दुल वाहिद के जीवन को बड़ा प्रभावित किया। अब्दुल वाहिद ने अपनी पुस्तक हक़्क़े शुबहात में लिखा है, "आरंभ में मैं शरीअत तथा तरीक़त की कुछ समस्यायें बड़े-बड़े आलिमों तथा सूफ़ियों से पूछा करता था किंतु संतोषप्रद उत्तर न मिलता था। मैंने सोचा कि संसार का भ्रमण करूँ। कदाचित् किसी ऐसे पुरुष से भेंट हो जाय जो इन समस्याओं का समाधान कर सके। जब रवाना हुआ तो प्रथम पड़ाव पर दोपहर के विश्राम के समय पीर दस्तगीर मख़दूम (गुरु) शेख़ सफ़ी को स्वप्न में देखा। उन्होंने अत्यधिक कृपा दृष्टि प्रकट की। मेरे मन में आया कि इस सयय मख़दूम उपस्थित हैं और यात्रा की आवश्यकता नहीं। अतः पुनः वज़ू करने के विचार से मख़दूम की सेवा से पृथक् हुआ। मख़दूम के एक मुरीद क़ाज़ी इलाहदाद क़िदवाई ने मेरे पीछे से आकर कहा कि तुझे मख़दूम बुला रहे हैं और कह रहे हैं कि मेरा दिल नहीं चाहता कि अमुक व्यक्ति किसी अन्य स्थान को जाय। फ़क़ीर तुरंत वापिस होकर उनकी सेवा में उपस्थित हुआ और कहा कि 'क़ाज़ी इलाहदाद ने आपकी शुभ जिह्वा से प्रकट की गई यह बात मुझ तक पहुँचाई है।' उन्होंने कहा, 'ऐसा ही है'। जब मैं जागा तो ठहरने तथा यात्रा के विषय में असमंजस में पड़ गया। अंत में यह निश्चय किया कि यदि फिर यही स्वप्न देखूँगा तो यात्रा न करूँगा। पुनः यही स्वप्न देखा और लौट पड़ा। शेख़ की ख़ानक़ाह में उनकी क़ब्र के पैरों की ओर चालीस दिन तक एतक़ाफ़ (एकांत वास) में

---

(१) मआसेरुल केराम, पृ० ३८-३९।

रहा। मेरी उन सब समस्याओं का पूर्ण रूपेण समाधान हो गया और इस पुस्तक में मैंने उन प्रश्नों तथा उत्तरों को लिखा है[१]।"

९७७ हि० (१५६९–७० ई०) में जब मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी लखनऊ, बिलग्राम पहुँचा उस समय वह अस्वस्थ था। एक रात को मीर उसे देखने आए। यह दोनों की पहली भेंट थी और इसने मलहम का काम किया। मीर ने कहा, 'यह प्रेम के फूल हैं[२]'।

मीर अब्दुल वाहिद की प्रसिद्धि के विषय में जब अकबर बादशाह को ज्ञात हुआ तो अकबर ने अपने एक विश्वासपात्र को मीर के पास भेजकर उनसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। मीर शाही दरबार की ओर रवाना हुए। जब वे दरबार में पहुँचे तो बादशाह ने उनका बड़ा आदर सम्मान किया और ५०० बीघे भूमि सियूरग़ाल (सहायता के रूप में भूमि) में प्रदान की[३]। इस भूमि के प्राप्त होने पर जो पत्र मीर ने एक अधिकारी को लिखा उससे ज्ञात होता है कि मीर इसे अपने लिये एक बंधन समझते थे।

---

(१) मुआसेरुल केराम, पृ० ३५।

(२) मुंतखबुत्तवारीख, भाग ३, पृ० ६६।

मुल्ला अब्दुल क़ादिर ने यह भेंट ९७७ हि० में लिखी है किंतु ९७९ हि० के हाल में अपने इतिहास के दूसरे भाग में लिखा है कि "फ़क़ीर कांत गोला से शाह लदार के मज़ार (समाधि स्थान) की जेयारत को (दर्शनार्थ) मकनपुर पहुँचा और प्रेम के जाल में फंस गया। ईश्वर ने प्रियतम की क़ौम वालों में से कुछ लोगों को मेरे ऊपर अधिकार प्रदान कर दिया। सिर हाथ तथा कंधे पर तलवार के ९ घाव लगे। सभी खाल कट गई किंतु सिर का घाव हड्डियों को तोड़ता हुआ, भेजे तक पहुँचा। भेजे तक घाव लगा और नीचे नस कुछ कट गई। दूसरे लोक का भ्रमण करके लौटा किंतु कुशल रहा बांगर मऊ में एक बड़ा ही योग्य जर्राह (शल्य चिकित्सा करनेवाला) मिल गया और उसने एक सप्ताह में घाव ठीक किए। मीर अब्दुल वाहिद की उपर्युक्त वार्ता से पता चलता है कि कदाचित् इसी घटना की ओर संकेत है और मुल्ला अब्दुल क़ादिर ने ९७९ हि० के स्थान पर ९७७ हि० लिख दिया है। ऐसी अशुद्धियां बदायूनी के इतिहास में बहुत बड़ी संख्या में हैं।

(३) मआसेरुल केराम (१), पृ० ३२।

मीर अब्दुल वाहिद की दृष्टि मुंतखबुत्तवारीख़ की रचना के समय बड़ी ख़राब हो गई थी ।[१] और वे उस समय क़न्नौज ही में निवास करते थे । बाद में वे बिलग्राम चले आए और उनका देहावसान शुक्रवार की रात्रि में ३ रमज़ान, १०१७ हि० (११ दिसंबर, १६०८ ई०) को हुआ[२] । उनकी अवस्था लगभग १०२ वर्ष की थी ।

मीर के चार पुत्र तथा दो पुत्रियां थीं । इनमें से ज्येष्ठ अब्दुल जलील थे जो बहुत बड़े सूफ़ी हुए हैं । उनका जन्म गुरुवार, २० रजब ९७२ हि० (२१ फ़र्वरी, १५६५ ई०) को हुआ । अपनी युवावस्था में वे १२ वर्ष तक पागलों की भांति जंगलों में घूमते रहे । उनकी मृत्यु सोमवार ८ सफ़र, १०५७ हि० (१५ मार्च, १६४७ ई०) को हुई[३] ।

उनके दूसरे पुत्र मीर सैयिद फ़ीरोज़ थे । उनकी मृत्यु ५ मुहर्रम, १०६६ हि० (४ नवंबर, १६५५ ई०) को हुई[४] । उनके तीसरे पुत्र मीर सैयिद यहिया थे । उनका जन्म २ ज़ीक़ाद, ९८५ हि० (११ जनवरी, १५७८ ई०) को हुआ था[५] । उनके चौथे पुत्र मीर सैयिद तैयिब थे । उनका जन्म ९ रबीउल आख़िर, ९८६ हि० (१५ जून १५७८ ई०) को हुआ । वे अपने पिता के शिष्य थे । अपने पिता के उपरांत उन्हें बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई । शेख़ अब्दुल हक़ मुहद्दिस[६] देहलवी उनके बड़े मित्र थे और उनके सम्मान हेतु उन्हें शेख़ तैयिब कहते थे । मीर तैयिब की मृत्यु ५ रबीउल अव्वल, १०६६ (२ जनवरी, १६५६ ई०) को हुई[७] ।

———

(१) मुंतखबुत्तवारीख (३), पृ० ९६ ।

(२) मुआसेरुल किराम (१), पृ० ३३ ।

(३) वही, (१), पृ० ४५–४६ ।

(४) वही, (१), पृ० ४५–४६ ।

(५) वही, (१), पृ० ४६–४७ ।

(६) शेख अब्दुल हक़ एक बहुत बड़े आलिम तथा सूफ़ी थे । इनकी मृत्यु १६४२ ई० में हुई ।

(७) मआसिरुल किराम (१) पृ० ४७–५१ ।

मीर अब्दुल वाहिद की रचनायें

मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने तसव्वुफ़ के विषय में कई पुस्तकों की रचना की। इनका पुस्तकों में सब-ए-सनाबिल[1] अथवा सनाबिल बड़ी प्रसिद्ध। इसमें तसव्वुफ़ के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या है। यह पुस्तक प्रकाशित भी हो चुकी है। मीर ग़ुलाम अली आज़ाद ने लिखा है कि एक बार रमज़ान ११३५ हि० (जून—जुलाई १७२३ ई०) में, इन पृष्ठों के संकलन कर्त्ता की भेंट शाहजहांनाबाद (देहली) में शेख़ कलीमुल्लाह चिश्ती[2] से हुई। मीर अब्दुल वाहिद की भी चर्चा हो गई। शेख़ कलीमुल्लाह मीर के गुणों का बहुत देरतक वर्णन करते रहे और कहा कि 'एक रात्रि में मैं मदीने में सो रहा था। मैंने स्वप्न में देखा कि मैं तथा सैयिद सिबग़तुल्लाह बुरुज़ी मुहम्मद साहब की सभा में उपस्थित हुए। बहुत-से सहाबी (सहचर) उम्मत (इस्लाम) के वली (सूफ़ी) उपस्थित थे। उनमें से एक से मुहम्मद साहब मुसकराकर वार्तालाप कर रहे थे और उन पर बड़ा स्नेह प्रकट कर रहे थे। जब सभा का अन्त हो गया तो मैंने सैयिद सिबग़तुल्लाह से पूछा कि 'ये कौन हैं जिनसे मुहम्मद साहब को इतना स्नेह है?' उन्होंने उत्तर दिया कि 'वे मीर अब्दुलवाहिद बिलग्रामी हैं और

---

(१) सनाबिल का अर्थ अनाज की बाली है। सबा का अर्थ सात है। इसमें सात अध्याय हैं। अतः इसका नाम सब-ए-सनाबिल रखा गया।

(२) इनका जन्म २४ जमादि उस्सानी, १०६० हि० (२३ जून, १६५० ई०) में हुआ। इनके पिता नूरुल्लाह ने देहली की जामा मस्जिद के निर्माण में विशेष भाग लिया। बहुत से कतबे (खुदी हुई इबारतें) इन्हींके हाथ की हैं। कलीमुल्लाह के चाचा लुतुफ़ुल्लाह भी बहुत बड़े गणितशास्त्रज्ञ थे। ताज महल, लालक़िला तथा जामा मस्जिद के निर्माण में इस वंश का बहुत बड़ा भाग था। शाह कलीमुल्लाह बहुत बड़े सूफी थे। इनकी सबसे अधिक प्रसिद्ध पुस्तक कशकोले कलीमी है। इसकी रचना शाह साहब ने ११०१ हि० (१६८९–९० ई०) में की। इनकी मृत्यु २४ रबीउल अव्वल, ११४२ हि० (१७ अक्तूबर, १७२९ ई०) में हुई।

उनके इतने सम्मान का कारण यह है कि उन्होंने सनाबिल की रचना की और इसे मुहम्मद साहब ने बड़ा पसन्द किया।[१]"

मीर अब्दुलवाहिद की एक अन्य पुस्तक हल्ले शुबहात है। इसमें मीर अब्दुल वाहिद ने तसव्वुफ़ के विषय में बहुत सी शंकाओं का समाधान किया है और इस्लाम से संबंधित बहुत-सी बातों के उत्तर लिखे हैं। इस पुस्तक की एक हस्तलिखित प्रति अलीगढ़ विश्वविद्यालय में विद्यमान है। इसकी नक़ल रजब १२२० हि० (१८०५ ई०) में हुई थी[२]।

कलेमातेचन्द एक और छोटी सी हस्तलिखित पुस्तक अलीगढ़ विश्व-विद्यालय के पुस्तकालय में विद्यमान है। इसमें तसव्वुफ़ संबंधी कुछ समस्याओं का समाधान किया है[3]। इनकी एक अन्य पुस्तक शरहे नुज़हतुल अरवाह[४] है नुज़हतुल अरवाह की टीका की चर्चा मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूंनी ने की है[५]। मीर ग़ुलाम अली आज़ाद ने 'क़िस्स ए चहार बेरादर (चार भाइयों की कहानी), शरहे मुसतले होते दीवाने ख़्वाजा हाफ़िज़ (दीवाने ख्वाज़ा हाफ़िज़ के पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या) आदि कई ग्रंथों को मीर की रचना बताया है।[६]

मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी ने लिखा है 'मीर को कविता करने का बड़ा ही उत्कृष्ट ढंग प्राप्त है। एक रूपवान सलोने प्रियतम के लिये लिखा है —

---

(१) म आसेरुरल किराम पृ० ३०

(२) एहसन कलेकशन २९७ं७।२१

(३) ,, ,, २९७ं७।१२

(४) यह तसव्वुफ की बड़ी प्रसिद्ध पुस्तक है और इसकी रचना रुक्नुद्दीन हुसेन (फ़ख्रे सादात हुसेनी ने) ११११–१२ ई० में की। उन्होंने अधिकतर मुल्तान तथा हेरात में निवास किया। इनकी मृत्यु ७२९ हिं० (१३२८ ई०) के लगभग हुई।

(५) मुन्तख़बुत्तवारीख, भाग ३, पृ० ६५

(६) मआसेरुल केराम, पृ० २९

(छंद)

तेरे ध्यान ने मेरे हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया है।
तेरे अतिरिक्त मेरे दिल में कदापि किसी के लिये स्थान नहीं।

(छंद)

निस्संदेह उसने युद्ध के उपरांत जो पहली बार संधि कर ली है,
कुछ समय के लिए प्रेम से बैठ जिससे मैं अपने आपको त्याग सकूं।

मीर अब्दुल वाहिद का एक दीवान (ग़ज़लों का संग्रह) अलीगढ़ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में विद्यमान है। इसकी प्रतिलिपि (नक़ल) १११६ हिं० (१७०४-५ ई०) में तैयार हुई थी[1]। मीर अब्दुल वाहिद एक बहुत बड़े कवि भी थे। मीर ग़ुलाम अली आज़ाद ने लिखा है 'कभी कभी वे कविता भी करते थे'।

हल्ले शुबहात में लिखा है, 'मैं ग़ज़ल में .ख्वाजा हाफ़िज़ शीराज़ी[1] का शिष्य हूँ और .ख्वाजा ने भी मुझे अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया है मानों इस तुच्छ से यह संकेत किया हो—

(छंद)

जिस किसीने भी ग़ज़ल में हाफ़िज़ का रहस्य सीख लिया
वह मेरी मधुर विचित्र शैली में मेरा मित्र है'[2]

मीर अलाउद्दौला क़ज़वीनी ने भी मीर अब्दुल वाहिद की कविता की प्रशंसा की है।[3]

हक़ाएके हिंदी की रचना मीर अब्दुल वाहिद ने जमादिअल अव्वल ९७४ हि० (नवम्बर-दिसम्बर १५६६ ई०) में की। इसमें उन शब्दों की व्याख्या की गई है जो हिंदी गानों में प्रयुक्त होते थे। यह पुस्तक तीन अध्यायों में विभाजित हैं—

---

(१) एहसन कलेक्शन ८९१ ५५११।८

(१) ख्वाजा शमसुद्दीन मुहम्मद हाफ़िज़ शीराज़ी ईरान के सबसे बड़े ग़ज़लों के कवि माने जाते है। ग़ज़लों द्वारा तसव्वुफ़ की गूढ़ व्याख्या ख्वाजा की ग़ज़लों में मिलती है। इनकी मृत्यु शीराज़ में १३८९ ई० में हुई।

(२) मआसेरुल केराम (भाग २), पृ० २४७-२४८

(३) नफ़ायसुलमआसिर

(१) उन वाक्यों के अर्थ के संकेत के विषय में जिनका प्रयोग ध्रुपद में होता है ।

(२) उन संकेतों तथा वाक्यों की व्याख्या में जो विष्णुपद में आते हैं।

(३) ध्रुपद एवं विष्णुपद के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर आनेवाले शब्दों की व्याख्या ।

इस पुस्तक की एक प्रति अलीगढ़ विश्वविद्यालय में विद्यमान है। लेखक को इस पुस्तकका पता १९५० ई० में अलीगढ़ विश्वविद्यालय की फ़ारसी पुस्तकों की सूची तैयार करते समय चला ।

यह पुस्तक सैयिद अली एहसन मारहरा निवासी के सुपुत्र सैयिद मुहम्मद एहसन (असिस्टेंट रजिस्ट्रार) अलीगढ़ विश्वविद्यालय द्वारा विश्वविद्यालय को प्रदान की हुई पुस्तकों में बहुत बुरी दशा में थी। संसार के विभिन्न भागों की हस्त-लिखित पुस्तकों का प्रकाशित सूचियों में इस पुस्तक का कहीं कोई उल्लेख नहीं। भारतवर्ष में जिन लोगों के पास अथवा जहाँ जहाँ फ़ारसी की हस्तलिखित पुस्तकें वर्तमान हैं और जिनकी कोई सूची अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है विशेषकर बिलग्राम, हरदोई, सांडी, लखनऊ तथा उन्नाव में विशेष प्रयत्न तथा खोज करने पर भी इस पुस्तक की किसी अन्य प्रति का कोई पता नहीं लग सका। संभव है कि अब इस पुस्तक की कोई प्रति कहीं वर्तमान न हो। सैयिद अली एहसन साहब की पुस्तकों में इस पुस्तक के वर्तमान होने का कारण यह है कि सैयिद साहब मारहरे के एक सूफ़ी वंश के बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और उस वंश का बिलग्राम के सैयिदों के वंश से विशेष संबंध था। मीर अब्दुल वाहिद के ही वंश के एक व्यक्ति सैयिद इमाम शाह गदा ने ११६९हि० (१७५६ ई०)में इसकी नक़ल करवाई थी, किसी प्रकार मारहरा पहुँच गई और सैयिद अली एहसन के वंशवालों के विद्याप्रेम के कारण सुरक्षित रह गई। सैयिद अली एहसन साहब उर्दू तथा फ़ारसी के बहुत बड़े विद्वान, लेखक तथा कवि थे। इनकी रचनायें बड़ी प्रसिद्ध हैं। ये अलीगढ़ विश्वद्यालय में उर्दू के अध्यक्ष थे और इनकी मृत्यु १९३९ ई० में हुई।

इस पुस्तक में ३६ पृ० हैं और पूरी पुस्तक फ़ारसी लिपि में बड़ी असावधानी से लिखी गई है। हिंदी शब्द लाल स्याही से फ़ारसी लिपि में

लिखे हैं। शेष पुस्तक काली स्याही से लिखी गई है। फ़ारसी लिपि में लिखे हुए हिंदी शब्दों का पढ़ना यों ही बड़ा कठिन होता है। और असावधानी से फ़ारसी लिपि में लिखे हुए शब्दों का पढ़ना तो बड़ी ही टेढ़ी खीर है विशेषकर उस अवस्था में जब कि पुस्तक दीमकों के प्रकोप द्वारा चलनी हो गई हो। किसी अन्य प्रति के विद्यमान न होने से कोई और भी सहायता न मिल सकी। ऐसी दशा में इस संस्करण में हिंदी के कुछ ऐसे शब्द रह गए हैं जो किसी प्रकार न पढ़े जा सकते थे। उन्हें मूल प्रति के अनुसार जो सबसे उचित रूप हो सकता था उसी रूप में लिख दिया गया है। उनकी शुद्धि का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।

हक़ाएक़े हिंदी

(हिंदी अनुवाद)

हे ईश्वर ! तूने मुझे राज्य (मनुष्यता) प्रदान किया तथा मुझे हदीस[1] के अर्थ के समझाए।

तू भूमि तथा आकाश का जन्मदाता है। तू लोक तथा परलोक में मेरा स्वामी है। मेरी मृत्यु मुसलमान के रूप में कर तथा पवित्र लोगों से मुझे मिला दे।

ये सिद्धांत वास्तविक अर्थ के सूचक हैं एवं कुछ हिंदवी वाक्यों तथा रागों में आते हैं।

मसनवी[2]

सितार तथा सरोद (बाजे) की आवाज़ एवं उतार चढ़ाव निरंतर ग़ैब[3] (परोक्ष) से इश्क़[4] (परम प्रेम) का रहस्य बताती हैं।

यदि तेरे अंतःकरण में परमप्रेम की ध्वनि आ जाय, तो हृदय के परदों को भी खोल देगी।

तू देख कि दोनों लोक परम प्रेम की ध्वनि हैं और ख़ल्क़ (प्राणी) तथा अम्र[5] (ईश्वर का आदेश) परम प्रेम के बाजे के परदे हैं।

ईश्वर के नामों[6] के ज्ञान का रहस्य क्या है ? दोनों लोकों को इश्क़ की एक आवाज समझो।

संसार के लिये उसका जीवन तथा मरण क्या है ? इश्क़ के क़ानून (बाजे) का मुख तथा उसकी आवाज़।

तार तथा सितार क्या हैं ? आध्यात्मिक रहस्य हैं। नदी शुष्क कर दे, जिससे तू उस रहस्य को सुन सके।

सूखी नदी, सूखी लड़की तथा सूखी ख़ाल[7] प्रत्येक घड़ी परोक्ष से परम प्रियतम के छिपे हुए रहस्य बताती हैं।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि शुष्क तारों तथा लकड़ियों से किस यह ध्वनि निकलती है। इसे समझ।

तू ऐमन[८] की घाटी में जाकर वृक्ष से यह आवाज़ सुनता है कि वास्तव में "मैं ही अल्लाह हूँ"।

इसी प्रकार वृक्ष की डाली के भी जिह्वा होती है और वृक्ष तथा डाली समाचार पहुँचाते रहते हैं।

केवल वृक्ष से अल्लाह से बातें करनेवाले मूसा[९] ही आवाज़ सुन सकते हैं, किंतु सत्यवादी मनुष्य डाली से भी आवाज़ सुन सकते हैं[१०]।

जिब्रील[११] तथा उनके परों की दशा को याद करो[१२]। यही आवाज़ अल्लाह की वार्ता का भी प्रमाण है।

यदि आरंभ ही से "अर्श आज़म"[१३] न हिले तो तार से राग की ध्वनि किस प्रकार उचित रूप से निकल सकती है?

स्मरण रहे कि किसी वाक्य का ज्ञाननिष्ठ लोगों की परिभाषा में कोई पूर्ण नियम तथा सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता, कारण कि उनके अनुसार प्रत्येक वाक्य की एक ध्वनि होती है और उसकी एक सीमा है चाहे वह किसी कारण से निर्धारित कर ली गई हो। प्रत्येक शब्द का एक अर्थ होता है जो उसके बोलने के अनुसार निश्चित होता है। उसका कारण चाहे जो कुछ भी हो। सीमा निर्धारण तथा कारण, संबंध के अनुसार होते हैं।

छंद

वजूद (ईश्वर का अस्तित्व) अपने कमाल (निपुणता) में घूम रहा है और उसकी सीमायें केवल एक संबंध से हैं।

संबंध तथा लगाव की कोई सीमा अथवा अंत नहीं। आवश्यकतानुसार प्रत्येक रूप (शब्द) के अनेक अर्थ होते हैं एवं प्रत्येक अर्थ के अनेक रूप होते हैं। इसी कारण किसी वाक्य का कोई निश्चित सिद्धांत नहीं हो सकता।

वास्तविकता अक्षरों में कदापि नहीं आ सकती, कारण कि अथाह समुद्र पात्र में नहीं समा सकता।

किंतु जो कुछ लिखा गया सादिक़ (साधक, सूफ़ी) के लिये ज्ञान की कुंजी है तथा रहस्यों के ज्ञानियों के लिये जलता हुआ दीपक है। जो अनुपयुक्त राग सुननेवाले के हृदय को व्याकुल कर देते हैं, उनका संबंध इन लोगों (सूफ़ियों) से नहीं होता।

छंद

—इस कारण कि प्रेम की बातें पहेली हैं न उनका सिर होता है और न पैर।

जो बात तेरे चित्त को सत्य न ज्ञात हो और जिसे तू नहीं जानता, उसे त्रुटिपूर्ण न कह। स्मरण रहे कि श्रोता बहुत हैं किंतु ज़ाएक़ (आस्वादयिता अर्थात् परमेशर-संबंधी बातों के रसिक) बहुत थोड़े हैं, जो ज़ाएक़ नहीं, वह इन ज्ञान संबंधी बातों के सुनने की योग्यता नहीं रखता। जिसे बहार (बसंत) तथा उसकी कलियां प्रभावित न कर सकें और संगीत तथा उसके तार उत्तेजित न कर सकें, उसका चित्त दूषित है और उसका कोई उपचार संभव नहीं।

छंद

हे मित्र, ज्ञाननिष्ठ डींग नहीं मारते उनको कश्फ़[१४] (दैवी प्रकाश) अथवा तसदीक़ (प्रामाणिकता) चाहिए।

प्रथम अध्याय

उन वाक्यों के अर्थ के संकेत के विषय में जो ध्रुव पद में आते हैं, हे ज़ाएक़, समझ ले।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सर्सुती (सरस्वती)** अथवा **सुर (स्वर)** आए तो **सरस्वती** से ईश्वर की दया के निरंतर तथा लगातार पहुँचने एवं परमेश्वर के वुजूद (अस्तित्व) की ओर संकेत होता है, जो अनंत है। **स्वर** से उस देन की ओर संकेत होता है जो तालिबों (साधकों, सूफ़ियों) के चैतन्य हृदय को प्राप्त होती रहती है जिनमें वारदात (उन्माद) जज़्बात (भावावेश) तथा इलहाम[१५] (दैवी प्रेरणा) सम्मिलित होते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **ताल** तथा **बंधन** की चर्चा हो तो इससे दृढ़ता की ओर संकेत होता है और यह करामात (चमत्कार) से भी बढ़ कर है। यदि हिंदवी वाक्यों में **अनागत अतीत** तथा **सम** का प्रयोग हो तो **अनागत** से उस जज़्बे (भावावेश) की ओर संकेत किया जाता है जिसके उपरांत सुलूक (साधना) होता है। **अतीत** से उस सुलूक (साधना) की ओर संकेत किया जाता है जिसके पूर्व जज़्बा होता है और **सम** द्वारा जज़्बे (भावावेश) तथा सुलूक (साधना) की बराबरी की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **पात्र** का उल्लेख हो तो इस शब्द द्वारा उस सालिक (साधक) की ओर संकेत होता है जो मजज़ूब[१७] हो जाए, अथवा उस मजज़ूब की ओर संकेत होता है जो सालिक (साधक) हो जाय, या केवल सालिक की ओर भी संकेत होता है।

यदि हिंदवी में **नायक** के गुणों की चर्चा हो तो इस शब्द द्वारा पीरे तरीक़त[१८] तथा मुर्शिदे हक़ीक़त[१९] की ओर संकेत होता है। संक्षेप में जिसे भी धर्म की चौखट से लाभ प्राप्त हो जाय, इस शब्द का तात्पर्य उसी से होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **भुवनायक** की चर्चा हो तो इसका तात्पर्य इस आयत[२०] से होता है 'नित्य वह एक नई शान से होता है। हे ईश्वर, प्रत्येक हृदय से (में) तेरे रहस्य दूसरे ही होते हैं'।

यदि हिंदवी वाक्यों में **बहरूपी** का उल्लेख होता है तो इसका संकेत इस ओर होता है कि जमीले हक़ीक़ी[२१] (परमेश्वर) का सौंदर्य संसार के कणों में से प्रत्येक कण में माशूक़ (प्रिय) के समान नई छवि तथा रमणीयता दिखलाता है, और आशिक़ (प्रेमी) के समान नई अभिलाषा तथा आकांक्षा प्रकट करता है। प्रत्येक समय में माशूक़ की सुन्दरता तथा रमणीयता नये रूप में प्रकट होती है, और आशिक़ की अभिलाषा एवं आकांक्षा नित नये प्रेम तथा आनंद का प्रदर्शन करती है, और इसकी कोई सीमा नहीं।

छंद

इस कारण कि उसका जमाल (माधुर्य) सहस्रों रूप रखता है, अतः प्रत्येक कण में एक नवीन दर्शन होता है।

अतः यह आवश्यक था कि उसने प्रत्येक कण को अपने जमाल (माधुर्य) द्वारा एक नये कपोल के रूप में प्रदर्शित किया।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सुढंग** के गुणों की चर्चा हो तो उससे उस मुक़ाम[२२] (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है जहां समस्त कमालात (निपुणता) एकत्र हैं और जहां समस्त हालात[२३] पाए जाते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **बेसी (बेशी)** के गुणों की चर्चा हो तो इससे संकेत होता है कर्म तथा वचन की बराबरी की ओर तथा अंतरंग एवं बहिरंग की समानता की ओर, जैसे कि बुजुर्गों ने कहा है 'जैसा तू अपने को दिखाता है वैसा ही हो जा' तथा 'तू जैसा है वैसा ही अपने को दिखा।'

यदि हिंदवी वाक्यों में **जमनिका** (**यवनिका**) का उल्लेख हो तो इसका संकेत ऐश्वर्य की चादर की ओर होता है कि ऐश्वर्य मेरी चादर है।'

यदि **पात्र** की विशेषता में **रूप रंग** तथा गुन (**गुण**) का प्रयोग हो तो **रूप** द्वारा आरिफ़ (ज्ञानी) के आकाश (ईश्वर) की ओर तथा **रंग** द्वारा परम प्रेम की निपुणता एवं परम प्रियतम के अतिरिक्त किसी अन्य ओर आकर्षित न होने की ओर संकेत होता है। **गुन** (**गुण**) का तात्पर्य निष्ठा एवं सत्यता से होता है।

छंद

यदि तू ख़ास बंदा होना चाहता है तो निष्ठा तथा सत्य के लिये तैयार हो जा।

यदि **पात्र** के गुणों में चतुराई का उल्लेख हो तो मक़ामे कनूनत तथा मुक़ामे बेनुनत की ओर संकेत होता है अर्थात् बहिरङ्ग में खल्क़ (सृष्टि) के साथ होना तथा अन्तरङ्ग में ब्रह्म के साथ होना, इस प्रकार कि सृष्टि ब्रह्म की ओर से असावधान न कर दे तथा ब्रह्म (का ध्यान) सृष्टि की ओर से असावधान न बना दे।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मांग** का उल्लेख हो तो उसके द्वारा सिराते मुस्तक़ीम (सीधे मार्ग) की ओर संकेत किया जाता है और बालों की **कालिमा** का तात्पर्य अंधकार पाप तथा भ्रष्टाचार की दिशाओं से होता है। अल्लाह ने कहा है 'सत्य यह है कि मेरा यह मार्ग सीधा है। इसी पर चलो और दूसरे मार्ग पर न चलो। वे तुम्हें अल्लाह के मार्ग से हटा देंगे।'

यदि हिंदवी वाक्यों में **भरी मांग** अथवा **बिथरी मांग** अथवा इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इससे सालिक (साधक) के नफ़्स (वासना) के मार्गभ्रष्ट होने को तथा ख़ुदी (अहंभाव) अथवा हृदय की मार्ग भ्रष्टता की ओर एवं अहंभाव के अभाव की प्रशंसा की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **घूंघट** की चर्चा हो तो इसके द्वारा आशिक़ की पवित्रता के आवरण की ओर संकेत किया जाता है! प्रेम ज़ुलैखा[२५] की पवित्रता के परदे के बाहर ले आता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सेंदुर** (सिन्दूर) तथा इसी प्रकार के शब्दों का, जिनका सम्बन्ध **मांग** के केश कर्म से है, प्रयोग होता है, तो इसका तात्पर्य ईश्वर की स्वीकृति से होता है।

यदि हिन्दवी वाक्यों में **अलक** अथवा इसी प्रकार के शब्दों अथवा **तिल** का उल्लेख होता है तो इसका तात्पर्य उन वस्तुओं से होता है जिनके द्वारा आरिफ़ों (ज्ञानियों) को व्यग्रता, तालिबों (अभिलाषियों) को उद्विग्नता तथा आसक्तों को दीनता प्राप्त होती है। कभी उनकी उस व्याकुलता की ओर संकेत होता है जो उन्हें परमेश्वर के आवरण में होने के कारण प्राप्त होता है। कभी इसका अर्थ पाप होता है। कभी कभी असावधानों की आयु की ओर भी संकेत किया जाता है।

छंद

यदि तुझे अपने बालों के एक तार का भी मूल्य ज्ञात हो तो अपने मृगमद की सुगन्ध वाले केश-पाश को कभी नष्ट न होने दे।

यदि हिन्दवी वाक्यों में **जूड़ा** का प्रयोग हो तो इसके द्वारा अहंभाव तथा आडम्बर के अंधकार की ओर संकेत किया जाता है, कारण कि वही समस्त अंधकारों का योग है।

यदि हिन्दवी वाक्यों में **लिलार** तथा **माथा** एवं इसी प्रकार के शब्द आएँ तो सिर से (ईश्वर) के लिखे (हुए आदेशों) की ओर तथा **बारगह** से प्रथम तअय्युन (निर्दिष्ट) की ओर संकेत होता है। यदि इनके आभूषणों का उल्लेख हो तो इनसे ईश्वर के उत्कृष्ट नामों की ओर संकेत होता है, जिनका प्रयोग ईश्वर के लिये ही होता है और जिनकी सीमा पहले से निर्धारित है। पूर्व निर्दिष्ट ज़ात (सत्ता) मुहम्मद (उन पर दुरुद और सलाम हो) की हक़ीक़त (वास्तविकता) है। परमेश्वर के बहुत-से उत्कृष्ट नाम हैं।

छंद

जो कुछ भी सर्वप्रथम ग़ैब (परोक्ष) से दृष्टिगत हुआ, वह निःसन्देह उसी की ज़ात (सत्ता) का नूर (ज्योति) था।

यदि **टीका** तथा **तिलक** की चर्चा हो तो इससे उपकार की ज्योति की ओर संकेत होता है जो किसीके मुख द्वारा स्पष्ट होता है "उनके मुखों में सिजदों के चिह्नों के कारण चमक है।

"प्रेमियों के चिन्ह दूर ही से प्रकट होते हैं।"

यदि हिंदवी वाक्यों में **नासिका** अथवा **बेसर** एवं इसी प्रकार के शब्दों की चर्चा हो तो इससे हृदय की सुगंधि की ओर संकेत होता है, जो प्रेम की सुगंध से मिश्रित होती है।

"यदि तू मुझे मूर्ख वृद्ध न समझे तो मैं यूसुफ़[२७] की सुगंध का अनुभव कर रहा हूँ।

छंद

मनुष्य को चाहिए कि वह सुगंध का अनुभव करना जाने क्योंकि समस्त संसार शीतल पवन से परिपूर्ण है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **लोचन** तथा **नेत्र** एवं इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इसके द्वारा उस नाम की ओर संकेत होता है जो दोरूपी संसार को प्रकट करता है तथा ऐसे विशेषणों का योग है जो एक दूसरे के विरुद्ध हैं।

छंद

कदाचित् मुझे तेरे काले नेत्रों ने यह कार्य सिखा दिया है अन्यथा मस्ती तथा गोपनीयता प्रत्येक द्वारा सम्भव नहीं।

और कभी बसीर (देखने वाला, ईश्वर) के नाम के अर्थ की ओर संकेत होता है और कभी मोमिन (धर्मनिष्ठ) की बुद्धि तथा ज्ञान की ओर और कभी उसके शिक्षा ग्रहण करनेवाले नेत्रों की ओर संकेत होता है। हदीस में आया है कि मोमिन के ज्ञान से भय करो, क्योंकि वह ईश्वर की ज्योति से देखता है।

यदि हिंदवी में **बांके नयन, छबीले नेत्र** अथवा **अलसाने नैन** या इसी प्रकार के नेत्रों के गुणों की चर्चा हो तो उससे उस आंख की ओर संकेत होता है, जिसके सम्मुख ज्योति तथा अंधकार दोनों के आवरण हट जाएं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **भौंहों, बरुनी** तथा **कटाक्ष** का उल्लेख हो तो उसका अर्थ इस छंद से स्पष्ट होता है।

छंद

भृकुटियों तथा कटाक्ष से मैंने दोनों लोकों को शिकार कर लिया है, तू इस बात पर ध्यान न दे कि धनुषबाण दृष्टिगत नहीं होते।

कभी कभी इस छंद की ओर संकेत किया जाता है।

उसके नेत्रों से प्राणों की रक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि मैं जिस ओर देखता हूँ, वह एक कोने में घात लगाए बैठा है और बाण धनुष में जोड़े है। कभी भृकुटि से क़ाबा क़ौसैन का स्थान समझा जाता है और कभी कभी

महराव (समरभूमि*) अर्थात् युद्ध के स्थान एवं युद्ध के हथियार की ओर संकेत करते हैं, अर्थात् युद्ध क्योंकि वहीं जेहादे अकबर (सर्वोच्च निरोध) होता है।

छंद

दृष्टि के छिपने के स्थान में मेरे घायल हृदय से युद्ध हो रहा है। उसकी भृकुटि तथा कटाक्ष के धनुष बाण मुझे ला दो।

यदि **आंख** के बन्द होने, रोने अथवा जागने के गुणों का उल्लेख हो तो उसका तात्पर्य वे गुण हैं जिनकी चर्चा इस हदीस में है—

'अग्नि तीन आंखों को हराम[२१] है। वह एक आंख जो परमेश्वर के मार्ग में जागे। दूसरी आंख वह जो ईश्वर द्वारा हराम की हुई वस्तुओं से बचे। तीसरी वह आंख जो भगवान के भय से रोए। कभी नींद के गुणों से इस आयत के इस अर्थ की ओर संकेत किया जाता है 'उसको ऊंघ अथवा निद्रा नहीं आती'।

छंद

उसके दोनों नेत्रों में सृष्टि का कोई मूल्य नहीं, तो फिर उसमें निद्रा एवं मस्ती किस प्रकार आ सकती है।

हमारा तथा सृष्टि का अस्तित्व एक स्वप्न है। मिट्टी का ब्रह्म से क्या संबंध हो सकता है?

यदि नेत्रों के साथ **काजल** का उल्लेख हो तो उससे इस (आयत) का सुरमा समझा जाता है—'आंख न झपकी' और कभी इस छंद से तात्पर्य होता है।

छंद

भाग्य के सँवारनेवाले ने कौन कौन-सी आपत्तियां उत्पन्न कीं। उसने उसके चंचल नरगिस (नेत्र) को नाज़ के सुरमे से काला कर दिया।

यदि **अँखियाँ फड़कीं** कहा जाय तो उससे (ईश्वर से) संभोग की आशा तथा शुभ शकुनों की ओर संकेत होता है।

यदि **अँखिया मटकी** कहा जाय तो माशूक़ के नेत्रों के कृत्रिम भावों की ओर संकेत किया जाता है, क्योंकि वह अज़ली (अनादि) सौंदर्य तथा माधुर्य की नदी का स्रोत है।

---

* यहां युद्ध की समरभूमि से नहीं अपितु आध्यात्मिक निरोध से तात्पर्य है।

छंद

तेरा कृत्रिम भाव अंत में संसार के लिये क़यामत बन जाता है। फिर तेरे चेहरे, मुखड़े, केशपास एवं शरीर का तो कहना ही क्या है?

यदि हिंदवी वाक्यों में **सरवन (श्रवण) कर्णफूल** अथवा **तरौना** या इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो जिनका संबंध कान के आभूषणों से होता है, तो इसका संकेत हृदय के, ग़ैबी (परोक्ष संबंधी) इलहामों (दैवी प्रेरणा) अथवा धार्मिक वाजों (प्रवचन) अथवा क़ुरान की शिक्षा सुनकर, खुल जाने से होता है। 'इस क़ुरान में उन लोगों के लिये शिक्षा है, जिनके पास हृदय है अथवा जो लोग (इसे) सुनकर प्रमाणित समझ लेते हैं।' इसका संकेत वस्तुओं (भूत) के तस्बीह (सुमिरन) की ओर होता है।

छंद

जो कुछ तू देखता वह उसके ज़िक्र[३१] में शोर गुल कर रहा है किंतु इस अर्थ को वही हृदय समझ सकता है जो कान बना हो।

यदि हिंदवी में **कपोल** अथवा इसी प्रकार के इसके पर्यायों अथवा **मुख** या **आनन** की चर्चा हो तो उससे मुकाशफ़ (दैवी प्रकाशन) एवं मुशाहदे (अनुभूति) के नूर (ज्योति) का उल्लेख होता है। कभी उस अर्थ की ओर संकेत होता है जिसका पारिभाषिक रूप से ईश्वर के मुख से संबंध होता है और कभी अज़ल (अनादि) की सफ़ेद रूई (आदर-सम्मान) तथा जन्म-जन्मांतर के सौभाग्य की ओर संकेत होता है। लोक तथा परलोक के कल्याण का संकेत उसी ओर होता है।

छंद

अज़ली सफ़ेद रू (अनादि काल से सम्मानित) मुहम्मद हैं क्योंकि उनके कारण संसार का शीश वृद्धावस्था के होते हुए भी काला है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **अधर** एवं उसकी **लाली** के गुणों का उल्लेख हो तो ईश्वर की अनादि काल से होने वाली अनुकंपाओं की ओर संकेत होता है। यदि उसके साथ-साथ **पान की लाली** के गुणों की चर्चा हो तो ईश्वर की दया के, प्रकोप के पूर्व, दृष्टिगत होने की ओर संकेत किया जाता है जिसकी चर्चा इस प्रकार है, "वे, जो लोग उत्तम रूप से उत्कृष्ट कार्य करते हैं और अधिक करते हैं।"

उसकी **मुस्कान** से इस ओर संकेत होता है "वह सबसे अधिक हँसने वाला है।" कभी इस हदीस की ओर संकेत होता है कि "हमारा ब्रह्म हँसता हुआ ही दृष्टिगत हुआ।"

छंद

वह लावण्यमय मुख किसी को दृष्टिगत न होता था। तू हँसा और तूने संसार में एक कोलाहल मचा दिया।

उसके मुख के मेव पर जो उद्यान के समान है, हँसी है। यह हँसी स्वाभाविक है कृत्रिम नहीं, और ऐसी हंसी है, जिसका उल्लेख नहीं किया जा सकता।

मेरी हँसी से रहस्य के संसार में उपवन खिल जाता है; कारण कि आत्मा संबंधी रहस्य मज़ाज़[32] की ज़बान से नहीं कहे जा सकते।

यदि हिंदवी वाक्यों में **रसना** की चर्चा हो तो उससे ग़ैब (परोक्ष) की ज़बान की ओर संकेत किया जाता है जिसे वही[33] तथा इलहाम (दैवी प्रेरणा) भी कहते हैं, किंतु वही की वार्ता से प्राचीन वार्ता (ईश्वर की इच्छा) स्पष्ट होती है "कोई मनुष्य अल्लाह से वही के द्वारा अथवा परदे के पीछे से वार्ता करने के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की वार्ता नहीं कर सकता।" इलहामी वार्ता से नवीन वार्ता समझी जाती है और वह इस प्रकार जैसे वह प्राचीन की ओर से हो। यद्यपि सहस्रों आवाज़ें उठती हैं किंतु हक़ीक़त के कानों से सुना जाय तो एक ही आवाज़ है।

छंद

सृष्टि एक नदी है और वार्ता की शक्ति उसका तट है, अक्षर सीपी हैं और बुद्धि तथा हृदय रत्न हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **कन** (कण्ठ) तथा **कंठी** के विशेषण का उल्लेख हो अथवा **कंठमाला** या **रुद्राक्ष** आदि गले के आभूषणों की चर्चा हो तो उसके द्वारा सालिक (साधक) के ईश्वर के आदेशों का सम्मान करने की अथवा पालन करने की ओर संकेत होता है और कभी संकेत होता है सम्मानित फ़क़ीरों के आदर सत्कार की ओर, जो अपने उद्योग के कारण धनी होते हैं और कभी-कभी बंदों के चुप रहने का तात्पर्य अल्लाह के जलाल (ऐश्वर्य) से होता है।

छंद

बंदे ने ईश्वर की आकांक्षा की अतः जब ईश्वर दृष्टिगत हुआ तो वह उसके जलाल (ऐश्वर्य) से चुप हो गया। भय के कारण नहीं अपितु उसके प्रभाव से तथा जमाल (माधुर्य) की रक्षा हेतु।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'कर'** तथा इससे संबंधित शब्दों का उल्लेख हो अथवा उसके आभूषणों की चर्चा हो; तो इसका संकेत ईश्वर की आकांक्षा करनेवालों के प्रति उसकी 'दृढ़ रस्सी' से संबंध रखने की ओर होता है। कभी गैब (परोक्ष) के हाथों की ओर संकेत होता है। जिसकी ओर इस आयत में संकेत है—"बल्कि उसके दोनों हाथ फैले हुए हैं"।

यदि **अंगुरी** का उल्लेख हो तो ईश्वर की अंगुलियों की ओर संकेत किया जाता है। यदि **तटस्थ** (?) का उल्लेख हो तो उन अंगुलियों के प्रभाव की ओर संकेत होता है जैसा कि हदीस में आया है "अतः मैंने उसकी अंगुलियों की ठंडक का अपने हृदय में अनुभव किया और मैंने सर्व प्रथम तथा अंतिम विद्या का ज्ञान प्राप्त कर लिया।"

यदि हिंदवी वाक्यों में **उर** तथा **छाती** का उल्लेख हो तो वुजूदे हक़ीक़ी (वास्तविक अस्तित्व) की ओर संकेत होता है जो इतना प्रत्यक्ष एवं स्पष्ट है कि वह शून्य ज्ञात होता है और सर्व प्रथम इसी पर दृष्टि पड़ती है।

यदि **छतिया मोटी** अथवा **कठिन** का उल्लेख हो तो मनुष्य के अनजाने पापों एवं अज़ली (अनादि काल के) आदेशों की कठोरता की ओर संकेत होता है, जो बंदों की आशाओं के शीशे को चकनाचूर कर देते हैं।

छंद

पराजय स्वीकार कर लेने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं क्योंकि शत्रु के हाथ में पत्थर है और मेरे हाथ में शीशा है।

यदि इनके **आभूषणों** का उल्लेख हो तो ईश्वर की कृपा तथा दान की अधिकता की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी पाक्यों में **दो थन** तथा इस प्रकार के दूसरे नामों का उल्लेख हो अथवा **सिर** (स्तनमुख या चूचुक) और उसकी **कालिमा** की चर्चा हो तो इनका तात्पर्य दो वारक रहस्यों से होता है जिनके अनावरण की शीघ्रता

में आज्ञा नहीं। एक तो क़दम (दैवी अधिकार) का रहस्य, दूसरे ख़ुदाई का रहस्य। उसकी चर्चा कठोरता तथा सख़्ती से इस कारण करते हैं कि ये दोनों रहस्य बुद्धि तथा ज्ञान दोनों के लिये सूक्ष्म और कठिन हैं। कभी दो थन से 'जब्र' (विवशता) व 'क़दर' (अधिकार) की ओर संकेत करते हैं जो सूरत (प्रत्यक्ष) तथा मानी (वास्तविकता) से संबंधित है।

छंद

वास्तव में जब्र (विवशता) है और प्रत्यक्ष में अख़्त्यार (अधिकार) है अतः मानी (वास्तविकता) को न त्याग तथा सूरत (रूप) को भी नष्ट न कर।

यदि हिंदवी में इस प्रकार के वाक्य आ जायं कि **"खेलत चीर भरक्यो, उभर गये थन हार"** तो इसका संकेत इस बात की ओर होता है कि यह दोनों रहस्य जो शरा तथा बुद्धि की चादर के नीचे लिपट जाते हैं, तो जब ख़ुदी (अहंभाव) नीचे गिरी तो वे स्वयं खुल जाते हैं।

रूबाई

जब अज़ली (अनादि काल के) भेद अबदाल[३४] का भोजन बन जाता है तो यह समस्त वार्त्ता नष्ट हो जाती है। शरा का फ़तवा[३५] देने वाले का कलेजा रक्त बन जाता है, बुद्धि के क़ाज़ी की जिह्वा गूंगी हो जाती है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **हार** का उल्लेख हो तो उसके द्वारा सच्चरित्रता एवं नैतिकता के गले के आभूषण की चर्चा की जाती है, जो किसी एक योग्य व्यक्ति में एकत्र हो जाते हैं। कभी उससे बंदिगी (दासता) का तौक़ समझा जाता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **पीठ** का उल्लेख हो तो इससे उस प्रभाव की ओर संकेत होता है जो अस्तित्व के सामने दृष्टिगत होता है।

छंद

जो अस्तित्व ब्रह्म के साथ स्थापित है, वह अभाव है किंतु नाम रखता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **कटि** तथा उसकी सूक्ष्मता के गुणों का उल्लेख हो तो बज़्खे कुबरा[३६] की ओर संकेत होता है जो वहदत (एकेश्वरवाद) है और वह 'अहदियत' (केवल) तथा 'वाहिदियत' (एक) का मध्य है।

छंद

बुद्धिमत्ता क्या है ? जीव तथा परम प्रियतम के मध्य की मंज़िल है। एक बरज़ख़ जो सबको एक स्थान पर एकत्र करता है। एक काल्पनिक रेखा है तथा दूरी बतानेवाली सीमा है।

कभी अभिलाषा की पूर्ति हेतु चेष्टा तथा प्रयत्न द्वारा कटिबद्ध होने एवं पूर्ण व्यवस्था करने की ओर संकेत होता है। इस आयत में भी इसी की चर्चा की गई है—"अल्लाह के मार्ग में जेहाद (निरोध) करो।"

यदि हिंदवी वाक्यों से **फुफुंदी** व **डोरी** अथवा ऐसी बातों का उल्लेख हो जिनकी चर्चा संभव नहीं, तो उसके द्वारा वाहदत (एकेश्वरवाद) के निश्चित रूप में होने की ओर कि जिसे 'साद'[३७] बताया गया है, संकेत होता है। कहा गया है कि 'साद' एक रस्सी है, जिसे अल्लाह, का अर्श रोके हुए हैं कभी इसे मीम[३८] बताया जाता है और इस ओर सकेत होता है "मैं अहमद बिला मीम हूँ[३९]।"

छंद

अहमद (मुहम्मद साहब) से अहद (ईश्वर) तक एक मीम का अंतर है। समस्त संसार इसी एक मीम में डूबा हुआ है।

कभी **फुफदी** तथा **डोरी** आदि से ईश्वर की अनुकंपा के प्रभाव तथा उस (कृपा) के फल के दृष्टिगत होने की ओर संकेत होता है। इनके द्वारा लोग तोबा तथा ईश्वर की ओर आकर्षित होते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **जाँघ** तथा **चरण** एवं इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इनसे सालिक (साधक) के अल्लाह की मारेफ़त (ज्ञान) के मक़ामात (लक्ष्य) तथा तरीक़त (तसव्वुफ़ का मार्ग व शरीअत की इबादतों (उपासनाओं) पर दृढ़ रहने की ओर सकेत किया जाता है।

यदि **पैर के आभूषणों** का उल्लेख हो तो सालिक (साधक) के इबादतों (उपासनाओं) पर दृढ़ होने की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यो में **सुस्त चाल** का उल्लेख हो तो इस छंद के अर्थ की ओर संकेत होता है—

छंद

उस का सुलूक (साधना) इमकान (संभावना, जगत्) से वाजिब (अनिवार्य ईश्वर) के ओर सैर तथा ऐसा कश्फ़ (दैवी प्रकाशन) समझना चाहिए जिसमें कोई हानि न हो।

यदि हिंदवी वाक्यों में **झनकार** का उल्लेख हो तो इससे तोबा[४०] करने वालों के रोदन एवं दुखी लोगों विलाप और आशिक़ों के नारों की ओर तथा मस्तों की विनति की ओर संकेत होता है।

(छंद)

यद्यपि शेख़ की तस्बीह (सुमिरन) के उच्च स्वर स्वीकार कर लिये जाते हैं किंतु कारागार के दःखी लोगों के विलाप में दूसरे प्रकार के स्वीकार होने की शक्ति होती है।

यदि **अभरण (आभरण**) का उल्लेख हो तारीक़त (तसव्वुफ़ का मार्ग) की पवित्रता की ओर संकेत होता है और इसे संसार, नफ़स (क़सवा) तथा खल्क़ (भूत) से पवित्रता कही जाती है।

संसार नितांत अपवित्र है। खल्क़ (भूत) साधारण अपवित्रता तथा नफ़स (वासना) विशेष अपवित्रता हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सिंगार (शृंगार**) की चर्चा हो तो उससे उस सज्जा की ओर संकेत होता है कि क़ुदरत के शृंगार करनेवाले हाथ ने दैवी रंगाई के रंग से उसको सजाया है और वह हज़रत महम्मद मुस्तफ़ा की सुंदरता थी। "निःसंदेह ईश्वर माधुर्य है और मधुरता से प्रेम रखता है।" संभव है कि मोरफ़त (ज्ञान) का सजावट के कुछ मक़ामों (लक्ष्यों) की ओर संकेत हो अर्थात् तोबा इसतेग़फ़ार[४१], ज़ुहद[४२], तवक्कुल[४३], तसलीम[४४], तक़वा[४५], रिज़ा[४६] आदि।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मोती** तथा **मुक्ताहल** (मुक्ताफल, मुकुताहल) और इसी प्रकार के दूसरे के दूसरे नामों का उल्लेख हो तो इससे नबियों तथा[४७] वलियों[४८] के वाक्यों की ओर संकेत होता है जिनमें शिक्षा, उपदेश, एवं मार्ग-प्रदर्शन होता है। यदि किसीके गुणों में **मोती प्रदान करने** का उल्लेख हो तो नबियों के उन ज्ञानों के दान करने की ओर संकेत करते हैं जो आलिमों को उत्तराधिकार में प्राप्त होते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में यह दुहरा अथवा इसीके समान दुहरा आए जो गवाई राग में है:—

साजन आवत देखि कै (हे) सखि तोरों हार।
लोग जानि मुतिया चुने हौं नय करौं जुहार॥

इससे यह संकेत होता कि भलाई के मोतियों का हार जो दृढ़ता के सूत्र में गुंथा है तथा कर्म के मोतियों का **गर्दनबंद** जो संकल्प की लड़ी में गुंथा है उसे परम प्रियतम के दर्शन के सन्मुख एवं इच्छित मुकासफ़े (दैवी प्रकाशन) हेतु बनावट एवं बहाना करके तोड़ डालूं, जिससे इस पद्य के भाव अनुकूल हो सके।

पद्य

यदि मस्ती में मैंने तेरा हार तोड़ डाला तो इससे सौ गुना मोल लेकर फिर भेज दूंगा। नित्य दीनता का शीश तोबा तथा इसतेग़फ़ार द्वारा बनवाता रहूंगा। तथा उन बिखरे हुए मोतियों को क्षमा याचना की अंगुलियों से चुनूंगा कि 'हे परमेश्वर हमने अपने न.फ्स (वासना) पर अत्याचार किया है जिससे लोग यह समझ जांय कि यह समस्त दीनता दृढ़ता के बिखरे हुए मोतियों को एकत्र करने की क्षमायाचना के लिये हैं और आगे की बात को न सोचें कि यह बदमस्तियां तथा बेढंगापन लज्जा एवं हार्दिक कामना परमेश्वर की निकटता तथा उच्च श्रेणी प्राप्त करने का कारण बन जायगी। वह (ईश्वर) टूटे हुए दिलों के पास रहता है।

"नय करौं जुहार" का अर्थ परम प्रियतम के सम्मुख झुकना, नम्र एवं लज्जित होना है, कारण कि प्रत्येक लज्जा में एक निकटता एवं करामात (संतों का चमत्कार) है, तथा प्रत्येक अपमान में संमान और दृढ़ता प्राप्त होती है।

छंद

मैं तेरे सुंदर मुख के समक्ष मोतियों की लड़ी तोड़ डालूं और मोती चुनने के लिये सिर झुकाऊं और तेरे चरणों का चुंबन कर लूँ।

दुःख तथा क्लेश, पापों के लिये पवित्रता का साधन हो जाते हैं। ईश्वर दुःखी हृदय को अपना मित्र रखता है, अतः **जुहार** वही निकटता तथा श्रेष्ठता है जो अपमान एवं लज्जा का फल है।

कुछ लोग यह कहते हैं **"मुस्काय तोरों (तोड़ों) हार"** तो इसका संकेत शौक़ दिलाने की मंज़िल के अधिक निकट होने (की ओर होता है) क्योंकि इस वाक्य में विचित्र भेद तथा अनूठे रहस्य हैं जिन्हें जौक़४६ रखने वालों के अतिरिक्त कोई नहीं समझ सकता। व्याख्या करने वाले के छंद*

---

* मीर अब्दुल वाहिद के छंद।

छंद

उसके मुखपर जो उपवन के समान है, मेरे लिये मंद मुस्कान है। यह मंद मुस्कान स्वाभाविक है कृत्रिम नहीं, किंतु इस मंद मुस्कान का उल्लेख नहीं हो सकता।

रहस्य के संसार में मेरी हंसी से उपवन खिल जाता है क्योंकि आध्यात्मिक रहस्य का उल्लेख मजाज़ी ज़बान द्वारा नहीं हो सकता।

प्रेम के मदांधों को ज्ञात होता है कि प्रियतम के आगमन के समय उसी को आज्ञा की शाखा, सिजदे तथा निकटता के बहाने से मंद मुस्तकान के साथ तोड़ डालना कितना आनंद दायक होता है।

छंद

जो अर्थ ज़ौक़ द्वारा उत्पन्न होते हैं, उन्हें शब्द किस प्रकार पा सकते हैं ?

अब यह भी समझना चाहिए कि उपर्युक्त शब्दों तथा अन्य बहुत से शब्दों से लेख के अनुसार अन्य अर्थ भी समझे जा सकते हैं क्योंकि प्रत्येक वाक्य के अनेक अर्थ होते हैं तथा अनेक संकेत एवं असंख्य रूप हो सकते हैं। विश्वास रखनेवाले नेत्रों तथा शिक्षा ग्रहण करनेवाली आंखों से ये रहस्य छिपे नहीं रहते।

छंद

शुभ समाचारों वाला वही व्यक्ति है जो संकेतों को जानता है। गूढ़ बातें बहुत-सी हैं किंतु रहस्य का ज्ञान रखने वाला कहां है।

किंतु अर्थ का प्रयोग श्रेणी के अनुसार करना चाहिए क्योंकि कही हुई बातें कर्म की कुंजियां हैं तथा अहवाल (आध्यात्मिक दशाओं) का दीपक।

पद्य

जो वस्तु इस लोक में दृष्टिगत होती है वह परलोक के सूर्य के प्रतिबिंब के समान है।

संसार केशपाश, तिल, रोम तथा भृकुटि के समान है। इनमें से प्रत्येक वस्तु अपने स्थान पर सुंदर है। जब लोगों ने बुद्धि के संसार को देखा तो उस स्थान से शब्द नक़ल कर लिए। बुद्धिमान ने जब शब्द के लिये अर्थ नक़ल किए तो उसने अनुपात को ध्यान में रखा, किंतु पूरी-पूरी उपमा संभव नहीं। उसकी खोज में चुप रहना अच्छा है।

किसी विशेष कारण से उपमा का प्रयोग करो तथा अन्य कारणों से पृथक् हो जाओ।

यदि हिंदवी लेखों में **वस्त्रों** का उल्लेख हो उदाहरणार्थ **चौरी, चोला, सारी, लंहगा, पग, पगा** तथा इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हो तो इससे मनुष्य के चरित्र के वस्त्रों की ओर क्रमशः संकेत होता है, कारण कि मनुष्य अपने अंतरंग तथा वहिरंग से मिलकर बनता है। उनमें से प्रत्येक का एक विशेष वस्त्र होता है जैसे मनुष्य का बहिरंग उसका शरीर होता है और उसका वस्त्र कपड़ा है, जिसे शरीअत में उचित बताया गया है मनुष्य का अंतरंग, क़ल्ब (हृदय) सिर (अंतःकरण) रूह (आत्मा) तथा ख़फ़ी (अन्तराल-स्थित) है। न.फ्स का वस्त्र शरीअत है, क़ल्ब का वस्त्र तरीक़त है, सिर का वस्त्र हक़ीक़त है, रूह का वस्त्र ईबूदियत (दासता) है और ख़फ़ी का वस्त्र महबूबियत (प्रेम) है। रिसाल-ए-मक्किया ५० में इसी प्रकार लिखा है। कभी इनका अभिप्राय उन वस्त्रों से होता है जिनकी चर्चा रसूलल्लाह ने की है और जैसा कि शेख़ अबुल हसन अली शाज़िली ने कहा है, "मैंने रसूलल्लाह को स्वप्न में देखा। उन्होंने मुझसे कहा, 'हे अली अपने वस्त्र को मैल से, ख़ुदा की सहायता से, प्रत्येक समय साफ़ रक्खो।' मैंने कहा 'हे रसूल मेरे वस्त्र कौन से हैं।' उत्तर मिला "ख़ुदा ने तुझे पांच ख़िलअत पहनाये है। प्रेम का ख़िलअत, मारेफ़त का ख़िलअत, ईमान (विश्वास) का ख़िलअत तौहीद का ख़िलअत तथा इस्लाम का ख़िलअत।' शेख़ ने कहा तब मुझे अल्लाह के इन शब्दों का अर्थ ज्ञात हुआ 'तू अपने वस्त्रों को पाक कर।'

छंद

तरीक़त वालों का अभिप्राय वाह्य वस्त्र नहीं होते। सुल्तान की सेवा के लिये कटिबद्ध हो और सूफ़ी बन जा।

कभी वस्त्र से मजाज़ी वुजूद (अस्तित्व) की ओर संकेत करते हैं जो हक़ीक़त का वस्त्र है।

यदि मेरा अस्तित्व पूर्णतया 'वह' बन गया है तो मैं उसका वस्त्र हूँ।

यदि उस वस्त्र को किसी रंग से रंगने का उल्लेख हो जैसे **"राता चुन सिर तक चुनरी"** या इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इसका यह अर्थ हुआ कि वुजूद (अस्तित्व) के मजाज़ी वस्त्र ने प्रेम का रंग स्वीकार कर लिया है। कभी इस बात की ओर संकेत होता कि सालिक (साधक)

धर्म तथा इस्लाम के कार्य में सावधान रहे और अपनी यात्रा में स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्रता की प्रेरणा से बचता रहे।

यदि हिन्दवी वाक्यों में **आँचर** अथवा **पल्लू** का उल्लेख हो तो इससे आशिक के अस्तित्व के गुणों की ओर संकेत होता है और कभी कभी इससे परम प्रियतम के गुणों के नाम भी समझे जाते हैं।

यदि हिन्दवी लेख में **मृगाजिन (मृग+अजिन) बाँकी** का उल्लेख हो तो इससे पाप से मिश्रित खिर्के (चीवर) की ओर संकेत किया जाता है कारण कि वही हिजाब (आवरण) का अस्तित्व है। कभी कभी इससे वुजूदे मुतलक़ (परमेश्वर) के नूर (ज्योति) के अनुचित वस्त्रों में प्रकट होने की ओर संकेत करते हैं।

पद्य

कामाग्नि मनुष्य का हृदय नहीं लुभा सकती कारण कि हक़ (सत्य, ईश्वर) कभी कभी बातिल (असत्य) की ज़बान में प्रकट हुआ करता है।

सत्य को सत्य ही के वस्त्र में देखो और सत्य को पहचानो। असत्य के वस्त्र में सत्य शैतानी कार्य है।

यदि हिन्दवी रचना में **पुष्टि-वाक (वाक्य)** तथा इसी प्रकार के शब्द बोले जायं तो इससे विचारों की आकुलता तथा मस्तिष्क की उद्विग्नता की ओर संकेत होता है और वह बात प्रेम अथवा मुराक़बे (ध्यान) एवं रेआज़त (तपस्या) की अधिकता से उत्पन्न होती है।

तेरा प्रेम हमारे मस्तिष्क में घूम रहा है। तू ही देख कि आकुल मस्तिष्क में क्या क्या घूम रहा है ?

छंद

हम आवारा हैं, सिर फिरे तथा मादक प्रेमी एवं इधर उधर दृष्टि डालने वाले हैं। इस नगर में कौन ऐसा है जो हमारे समान नहीं।

यदि हिन्दवी वाक्यों में **अँगिया** तथा **कंचुकी** एवं इसी के समान शब्दों का प्रयोग हो तो इनसे अहवाल (आध्यात्मिक दशाओं) की ओर संकेत होता है जो कि दास तथा स्वामी (ईश्वर) के मध्य में उत्पन्न होते हैं और दूसरों की दृष्टि से छिपे रहते हैं और कभी कभी तरीक़त के व्यवहार की ओर संकेत होता है।

यदि हिन्दवी रचना में **कटाक्षों की अंगियत** तथा इस प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इससे मारेफ़त (ज्ञान) के मुक़ामात (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है, यद्यपि इनसे तौहीद (एकेश्वरवाद) समझो जाती है। तौहीद उन वस्तुओं को छोड़ देने का नाम है, जो बढ़ा ली गई हैं किंतु इन पर शरई प्रतिबंध के बेल-बूटे बने हैं।

छंद

वही पूर्ण मनुष्य है जो सरदारी में भी दासता का कार्य करे।

यदि हिंदवी रचनाओं में **सौंध भरी अँगिया** का उल्लेख हो तो इस छंद के अर्थ की ओर संकेत होता है।

छंद

मैंने अपने वुजूद (अस्तित्व) के साथ प्रियतम के रूप को एक कर लिया है, तो फिर मैं नित्य अपने आपको किस कारण आलिंगन न करूँ।

यदि हिंदवी रचना में **'अँगिया फाटी जोबन भार'** कहें तो इससे बिना किसी क्रम के प्रकट होने वाले उन वाक्यों की ओर संकेत होता है जो हाल (मूर्च्छा) के प्रबल और क्षणिक वेग में अनायास उत्पन्न हो जाते हैं।

छंद

यह उचित नहीं कि रहस्य आवरण के बाहर आ जाय अन्यथा मादक प्रेमियों की सभा में कोई ऐसा समाचार नहीं जो वर्तमान न हो।

और यह भी समझ लो कि मारेफ़त (ज्ञान) प्राप्त किए हुए लोग, अन्य लोगों को विवश समझते हैं और कहते हैं।

छंद

ऐमन की घाटी में अकस्मात् एक वृक्ष कहता है, "मैं ही अल्लाह हूँ।"

एक वृक्ष से "मैं अल्लाह हूँ" की आवाज़ यदि उचित समझी जा सकती है तो फिर यह आवाज़ किसी अच्छे व्यक्ति[५९] द्वारा किस प्रकार अनुचित समझी जा सकती है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **तनी** एवं **बंद** का उल्लेख हो तो इससे मनुष्य के मनुष्यता के गुणों की तथा मनुष्य के चरित्र के गुणों की ओर संकेत होता है कारण कि मनुष्य का अस्तित्व इन्हीं गुणों से संबंधित है। इससे कभी शरीअत के प्रतिबंध का ओर संकेत होता है क्योंकि मनुष्य की बुद्धि तथा उसका नफ़्स (वासना) इन्हीं प्रतिबंधों से घिरा है।

यदि हिंदवी रचना में कहें "काढ़ कटारिहिं कब तन बौरी मूर्ख गवार" तो इसका तात्पर्य यह होता है कि काटने वाली तलवार को शरीअत के संदेशों के मियान से निकाल, और इस वाक्य के अनुसार कि "अपने नफ़्स (वासना) को मुजाहदों (दमन) तथा उसके विरोध की तलवार से मार डाल", मुजाहदे (दमन) की तलवार को नफ़्स (वासना) के विरोध के मियान से खींच ले तथा मनुष्यता के गुणों को एक ही बार काट डाल।

छंद

यदि तू सर्वदा प्रियतम का संभोग चाहता है तो अपने आप से तथा समस्त संसार से पूर्णतया पृथक् हो जा।

चोला और है भौतिक बाध निवारि।

इस लिये कि तेरे पास इस वुजूद (अस्तित्व) तथा इन गुणों से अधिक उत्कृष्ट वुजूद एवं गुण उत्पन्न होने चाहिए, किंतु महबूब (प्रियतम) का संभोग इसके अतिरिक्त किसी अन्य उपाय से संभव नहीं, वह इस अवसर के अतिरिक्त, जब कि मनुष्यता वर्तमान है, पुनः प्राप्त न होगा।

छंद

इस समय उपचार ढूंढ़ ले, जब कि तेरा मसीहा (उपचारक) भूमि पर है। जब वह मसीहा आकाश पर चला गया तो उपचार हाथ से जाता रहेगा।

यदि हिंदवी वाक्यों में **टूटे बंद** अथवा **छूटे बंद** अथवा **तरके (तड़के) बंद** एवं इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हो तो इससे तौहीद (एकेश्वरवाद) वालों की बुद्धि एवं शरा के प्रतिबंध का विचार न रखने से मुक्ति की ओर संकेत होता है। तौहीद (एकेश्वरवाद) कर्म की देख-भाल छोड़ देने का नाम है न कि कर्म को छोड़ देने का। यह जो लोगों ने कहा है, कि तौहीद बढ़ी हुई वस्तुओं को छोड़ देने का नाम है, इसका अर्थ यही है कि "तौहीद बढ़ी हुई वस्तुओं के छोड़ने को कहते हैं न कि कर्म को छोड़ने को।" यह कार्य बड़ा ही कठिन है। यह समझ लो कि इन दोनों मक़ामों (लक्ष्य) पर साथ ही साथ ठहरे रहना असंभव है। मारेफ़त (ज्ञान) वाले विलायते इलाही (संत लोक) के बल से इन दोनों स्थानों पर खड़े रह सकते हैं और वह बुद्धि का मैदान नहीं है।

छंद

इस पथ पर चलना बुद्धि तथा सावधानी के लिये संभव नहीं। हृदय का रहस्य मंज़िल का पत्थर नहीं है।

इसीलिये कहा गया है कि "कटावों की चोली दलमली होय।" इसका अर्थ यह है कि तरीक़त के मक़ामात (लक्ष्य) जो हक़ीक़त की चित्र-शाला थे, वे आपस में उलझ गए तथा मारेफ़त के अहवाल (आध्यात्मिक दशाएँ) जो आरिफ़ (ज्ञानी) के होने तथा न होने पर अवलम्बित थे, एकत्र हो गए। **रख़ में राई न जाय** अर्थात् जो सावधान व्यक्ति यह चाहता है कि बुद्धि के द्वारा इन दोनों मक़ामात (लक्ष्य) पर अधिकार पा ले तो उसने दोनों मक़ामों का ध्यान रखने के नियम को न जाना और वह दोनों श्रेणियों की रक्षा के मक़ाम पर न खड़ा हो सका।

रुबाई

यह तरीक़त का मार्ग बुद्धि के पैरों से तै नहीं होता। प्रेम के पैरों की धूल बुद्धि से बढ़ कर है। वह रहस्य, जो फ़रिश्तों को भी ज्ञात नहीं है। बुद्धि तू तो मूर्ख है, वहां बुद्धि (तू) किस प्रकार जा सकती है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सुहागिन (सुहागिनि)** का उल्लेख हो तो उससे इनसाने कामिल (महापुरुष) तथा मारेफ़त (ज्ञान वालों की ओर संकेत करते हैं, क्योंकि सृष्टि की रचना करने वाले ईश्वर ने जो जगत् उत्पन्न किया है, उसका लक्ष्य इन्हीं लोगों का प्रेम है।

यदि **दुहागिन (दुहागिनि)** का उल्लेख हो तो उसके द्वारा उस समूह की ओर संकेत होता है जिन के विषय में यह कहा जा सकता है 'यह सब लोग पशुओं के समान है'। कभी उन लोगों की ओर संकेत होता है, जिन्हें 'खुदा उन्हें चाहता है, वे खुदा को चाहते हैं' की सभा में कोई संमान नहीं। कभी उस सालिक (साधक) की ओर संकेत होता है जो संभोग की मंज़िल तक नहीं पहुँचा है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **बालापन** अथवा **नैहर** का उल्लेख हो तो **बालापन** द्वारा विचारों की बाल्यावस्था की ओर संकेत होता है क्योंकि मुरीद (चेले) पीरों (गुरू) के रूहानी (आध्यात्मिक) पुत्र होते हैं।

छंद

मुरीद (चेले) इस मार्ग में बालकों से भी कम हैं और मशाएख़ (गुरु) दृढ़ दीवार के समान हैं। उस छोटे बालक से चलना सीख कि उसने किस प्रकार दीवार का सहारा लिया।

नैहर से आलमे नासूत[५२] (नरलोक) में फंसे हुए लोगों की ओर संकेत करते हैं और यही लोक मनुष्य के तत्व के उत्पन्न होने का स्थान है। जो व्यक्ति दो बार पैदा न हो वह आकाश के राज्य में प्रविष्ट नहीं हो सकता। पहला जन्म तो सब लोगों को ज्ञात है और दूसरा जन्म चित्त की दया से उत्पन्न हुआ कहा जाता है। चित्त माताओं के समान है।

छंद

तेरे भौतिक तत्त्व सबसे निम्न श्रेणी की मातायें हैं। तू पुत्र है और तेरे पिता बड़ी उच्च श्रेणी (उलवी) के पिता हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **तरुनापन** का प्रयोग हो तो उससे मारेफ़त तथा प्रेम की युवावस्था और तरीक़त एवं हक़ीक़त के मक़ामों पर पहुँचने की ओर संकेत होता है।

छंद

जिस स्थान पर भी प्रेम अपना सिर उठाता है, सौ वर्ष के वृद्ध को भी युवक बना देता है।

उसकी वास्तविकता अस्तित्व के अंधेरे ग्राम से निकलना है। "हे हमारा पालन करने वाले, हमें इस ग्राम से निकाल, जिसके निवासी अत्याचारी हैं।"

छंद

दूध पीता शिशु अपनी माता के पास झूले में बंदी रहता है।

जब वह वयस्क तथा यात्रा के योग्य बन जाता है तो यदि वह पुरुष होता है तो अपने पिता के साथ हो जाता है। तू भी हे पिता के प्राण, पिता के साथ हो जा। साथी बाहर निकल गए, तू भी बाहर निकल जा।

यदि हिंदवी वाक्यों में **ससुराल** का उल्लेख हो तो उससे मारेफ़त वाले लोगों के उस स्थान की ओर संकेत होता है, जो आकाश का राज्य है।

छंद

हम आकाश के लिए गर्व की वस्तु थे तथा फ़रिश्तों के मित्र थे। हम पुनः इसी स्थान को जाते हैं। ऐश्वर्य का मकाम (लक्ष्य) ही हमारी मंज़िल है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **बूढ़ापन** शब्द आए तो उससे वुजूद (शारीरिक अस्तित्व) के गुणों के अपमानित होने की ओर संकेत होता है। अस्तित्व के गुण प्रेम का राज्य नहीं प्राप्त कर पाते। 'निःसंदेह बादशाह जब ग्राम में प्रविष्ट होते हैं तो उसको छिन्न-भिन्न कर देते हैं तथा उसके सम्मानित व्यक्तियों को अपमानित कर देते हैं'; और कभी इससे अवस्था एवं ज्ञान के पतित बन जाने की ओर संकेत होता है और यह बात मारेफ़त के शिखर पर उत्पन्न होती है जैसा कि कहा गया है कि 'अंतिम अवस्था प्रारंभ की ओर पलटने का नाम है और तुम में ऐसे भी लोग हैं जो अवस्था के सबसे पतित भाग की ओर लौटते हैं जिससे वे ज्ञान के उपरांत किसी वस्तु को भी न जान सकें।' वास्तव में ऐसी वृद्धावस्था मारेफ़त के संसार में युवावस्था है और युवावस्था वृद्धावस्था के समान है।

समझना चाहिए कि मनुष्यता की अवस्था और है तथा मारेफ़त की अवस्था अन्य है। जिस प्रकार मनुष्य की अवस्था में बाल्यावस्था युवावस्था तथा वृद्धावस्था है उसी प्रकार मारेफ़त की अवस्था में बाल्यावस्था युवावस्था एवं वृद्धावस्था होती हैं। एक दिन ऐसा आता है जब कि मनुष्यता की अवस्था समाप्त हो जाती है। 'प्रत्येक प्राणी के लिये मृत्यु का आस्वादन आवश्यक है।' इसमें इसी मृत्यु की ओर संकेत होता है, किंतु जो मारेफ़त की अवस्था में अन्त को पहुँच जाते हैं उनके लिये इस आयत में संकेत है—'हम उसे पवित्रता की अवस्था में जीवित रखेंगे।'

छंद

मैं तेरे वियोग में वृद्धावस्था को प्राप्त हो गया तो तेरे होठों ने कहा कि 'चिंता न कर। हम एक चुम्बन देकर हजार वर्ष के वृद्ध को युवक बना देते हैं।'

यदि हिंदवी वाक्यों में **ब्याह** आए तो उससे निकाहे हक़ीक़ी की ओर संकेत होता है और यह निकाहे हक़ीक़ी इस प्रकार है कि मुरीद (चेला) तालब (अभिलाषी) एवं आशिक़ पीर व मुर्शिद (गुरु) के अधिकारों के समक्ष

शीश नवा देने के कारण अशक्त तथा पराधीन हो जाता है तथा प्रियतम के समक्ष प्रेम के बंधनों के कारण विवश हो जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि बंदे (दास) ईश्वर के ऐश्वर्य के अधिकार के समक्ष बंदिगी (दासता) के निकाह के बंधनों में विवश हैं। ब्याह का अभिप्राय 'रुहानी निकाह' है और वह इस प्रकार कि प्रथम क़ैद जब बंदा (दास) वुजूद के जाल में बंधा, "रूहे आज़म[५३]" है और परमेश्वर के शुहूद (साक्षात्कार) से अत्यधिक निकट है। इसी को ईश्वर ने अपने आप से संबंधित किया है और "मेरी रूह में से तथा हमारी रूह में से" जैसे शब्दों से संबोधित किया है। आदमे कबीर, प्रथम खलीफ़ा[५४], दैवी व्याख्या करनेवाला, वुजूद की कुंजी तथा ईज़ाद का क़लम एवं "रूहों का स्वर्ग[५५]" सब उसी के गुण बताए गए हैं। अनादि अभिलाषाओं ने उसे (मनुष्य को) संसार में अपना उत्तराधिकारी होने से संबंधित किया है* और दैवी रहस्य की कुंजियाँ उनको सौंपी हैं और इसमें से व्यय करने की भी उसे आज्ञा दी है। अपने समस्त नामों तथा अपने समस्त गुणों का उसे खिलअत पहनाया और उसकी दृष्टि में दैवी चमत्कार प्रदान किए। एक तो अपने जलाल (ऐश्वर्य) के प्रदर्शन के लिये और दूसरे दैवी युक्ति के जमाल (माधुर्य) को देखने के लिये। वह पहली दृष्टि के अनुसार आगे बढ़नेवाला है और दूसरी दृष्टि के अनुसार पीछे हटनेवाला है जैसा कि हदीस में उल्लेख है "फिर ईश्वर ने उससे कहा कि आगे बढ़, तो वह आगे बढ़ा और फिर उसने कहा कि पीछे हट तो वह पीछे हट गया"। पहली दृष्टि का परिणाम ईश्वर का प्रेम है तथा दूसरी दृष्टि का परिणाम नफ़्से कुल्ली है। और नफ़्से कामिल उस श्रेणी का नाम है जो रूहे आज़म से उत्पन्न होती है। जो लाभ भी रूहे आज़म, ईश्वर द्वारा प्राप्त कर लेती है नफ़्से कुल्ली भी उसी के योग्य हो जाती है। रूहे आज़म तथा नफ़्से कामिल में प्रभावित करने एवं प्रभाव स्वीकार करने के कारण एवं बल तथा निर्बलता के कारण स्त्री तथा पुरुष का संबंध स्थापित हो जाता है और परस्पर प्रेम प्रमाणित हो जाता है। इन्हींके मिलने के कारण सृष्टि में अन्य वस्तुएँ उत्पन्न हुईं तथा भाग्य की धात्री के हाथ तथा ग़ैब (परोक्ष) की दया से ज़ुहूर (साक्षात्कार) के लोक में आ गईं। उस समय रूहे इज़ाफ़ी (बढ़ी हुई रूह) मिट्टी के बने हुए आदम के वुजूद (अस्तित्व) के दर्पण में प्रतिबिंबित हुई। ईश्वर के समस्त नाम तथा गुण उसमें चमकने लगे तथा "हमने आदम को समस्त नाम सिखाए" के चमत्कार की पताका गाड़ दी गई

* अर्थात् उत्तराधिकारी बनाया है।

और "मैं पृथ्वी पर उत्तराधिकारी बन रहा हूं" की पदवी प्राप्त हो गई। खिलाफ़त (खलीफ़ा बनाए जाने) के उस आज्ञापत्र पर "अल्लाह ने आदम को अपनी सूरत पर पैदा किया" की मुहर लग गई। अतः जिस प्रकार संसार में आदम का अस्तित्व रूहे आज़म का प्रमाण है तथा प्रकट करता है उसी प्रकार हव्वा का अस्तित्व भी संसार में सूरते मुकम्मल (पूर्णरूप) का प्रमाण है एवं स्पष्ट करता है। हव्वा के आदम से उत्पन्न होने का उदाहरण नफ्स कुल्ली के रूहे आज़म से पैदा होने का उदाहरण है। नफ़्स तथा रूह के परस्पर जोड़ा बनने का तथा इनमें पुरुष एवं स्त्री के संबंध स्थापित होने का यही प्रभाव था जो आदम तथा हव्वा के रूप में प्रकट हुआ। जिस प्रकार रूह तथा नफ़्स के द्वारा समस्त वस्तुएँ उत्पन्न हुईं उसी प्रकार वे संतानें आदम की पीठ में थीं और वे हव्वा तथा आदम के जोड़ा मिलने के कारण हुईं। अतः आदम तथा हव्वा का अस्तित्व नफ़्स एवं रूह से मिलकर है। फलतः हव्वा तथा आदम के संमिलन से एक मिलाप तैयार हुआ और नफ़्स तथा रूह का एक अपूर्ण जोड़ा बंध गया और दोनों से उत्पत्तियां हुईं। अतः मानव जाति के पुरुषों की उत्पत्ति ने रूहे कामिल के रूप से लाभ प्राप्त किया और इसमें कुछ नफ़्स के भी गुण मिले रहे तथा स्त्रियों की उत्पत्ति नफ़्से कुल्ली के रूप से हुई और उसमें कुछ रूह के गुण भी मिल गए।

छंद

धर्म में रूहानी निकाह हुआ तथा नफ़्से कुल्ली ने दुनिया महर[५७] में प्रदान की।

यदि हिंदवी वाक्यों से **मांगल (मांगल्य)** तथा **सोहला** शब्द आएं तो इससे आशिक़ तथा माशूक़ की सहमति एवं प्रसन्नता की ओर संकेत होता है जब कि दोनों में एक दूसरे से प्रेम हो जाय। "अल्लाह उनसे संतुष्ट रहे और वे अल्लाह से संतुष्ट रहें," इसी मक़ाम (लक्ष्य) का नाम है ? कभी इससे संभोग अथवा संभोग की आशा की प्रसन्नता एवं एक दूसरे के दर्शन की अभिलाषा की ओर संकेत होता है–"जान लो कि सदाचारियों की मुझसे मिलने की बहुत समय से अभिलाषा है। मैं भी उन लोगों से मिलने का बड़ा इच्छुक हूं।" इस हदीस में यही उल्लेख है। कभी इन शब्दों से उस हर्ष की ओर संकेत होता है जो आशिक को उस समय प्राप्त होता है जब माशूक़ उसको अशिष्टता, त्रुटियों एवं भूलों के होते हुए भी उसे स्वीकार कर लेता है। "तुम

मेरे लिये हो, चाहे स्वीकार करो हो अथवा मना करो और मैं तुम्हारे लिये हूँ, चाहे तुम्हें अभिलाषा हो अथवा अनभिलाष !"—में इसी घटना का उल्लेख है। कभी इन शब्दों से आनंद के अनुभवों की ओर एवं हर्ष के मक़ामात (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है; जैसा कि कहा गया है,

छंद

सादी तेरे प्रेम के मार्ग में दृढ़ निकला। लोग कौन हैं और कैसे हैं तथा क्या हैं ?

यदि हिंदवी वाक्यों में **सौत** का उल्लेख हो तो इस बात की ओर संकेत होता है कि परलोक इस लोक की **सौत** है और यह लोक परलोक की **सौत** है। जब तू एक को प्रसन्न करेगा तो दूसरी भाग जायगी और यह दोनों एक स्थान पर कदापि एकत्र नहीं हो सकतीं[५८]। कभी मलकूत वालों की ओर भी संकेत होता है और इसी शब्द से कभी एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से संबंध भी समझा जाता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मान** या **मटकनि** की चर्चा हो तो इससे बंदे (दास) के खुदा की ओर से फिर जाने एवं अल्लाह के ज़िक्र से असावधान हो जाने की ओर संकेन होता है और **मानमती** (मानवती) वह है जो ज़िक्र[५९] तथा इबादत से फिर जाय और मारेफ़त तथा मुहब्बत से असावधान हो जाय।' अल्लाह के कहा है 'जो मेरे ज़िक्र से मुँह फेर लेगा उसकी जीविका में कमी हो जाएगी और वह खाली हाथ हो जाएगा और हम उसे क़यामत के दिन अंधा जमा करेंगे'। अर्थात् जो कोई मेरी स्मृति से मुँह फेर लेगा, उसके लिये इस लोक तथा परलोक में जीविका बड़ी दुष्कर हो जायगी। ऐसे मुंह फेरने वालों को हम क़यामत में अंधा बनाए रखेंगे और वह नरक तथा नाना प्रकार के कष्टों के अतिरिक्त कुछ न देख सकेगा। यह तो उसकी दशा है जो केवल जिक्र से मुँह फेर ले, तो उसकी क्या दशा होगी जो जिक्र के स्वामी (अल्लाह) से मुँह फेर ले।'

यदि हिंदवी वाक्यों में **'जब जब मान दहन करे तब तब अधिक सुहाग'** एवं इसी प्रकार की चर्चा हो तो इस प्रकार की रचनाएँ उस समूह के लिए स्वीकार की गई हैं जिनके लिये कहा गया है, 'मैं पीठ फेरने वालों का अभिलाषी हूँ।' इसका अभिप्राय उन लोगों की सफलता है, क्योंकि यह बात कि 'जब भी वे किसी पाप का विचार करते हैं मैं उनके हेतु अधिक दया करता हूँ।' यही उन लोगों की सफलता का चिह्न है। इस

प्रकार की रचनाओं का एक अन्य अर्थ भी है जो इससे भी अधिक गूढ़ है और उसे अधिक स्पष्ट रूप से कहना सम्भव नहीं किंतु इस छंद में इसकी ओर संकेत है।

छंद

जिस माशूक ने नाज़ से चुंबन न दिया, उसने मुझसे चुंबन माँगा और मैंने न दिया।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सखी** का उल्लेख हो तो उससे इस बात की ओर संकेत होता है कि परस्पर ख़ुदा के लिये तथा ख़ुदा से संबंधित मित्रता रखें और कभी ऐसे मित्रों की ओर संकेत किया जाता है जो एक ही मत तथा एक ही वंश से सहमत हों। यदि एक **सखी** को मध्यस्थ बनाकर किसी को सन्मार्ग पर लाने के लिये भेजें कि वह उस **मानमती** को प्रियतम को मिलन की ओर बुलाए और उसे सजाए और इस प्रकार की रचनायें मध्य में रखे और कहे।

'उठ चल बेग करन लाई ब्यासही चतुरदस विद्या निधान' (१)
और कहे,

"तुम मान छाड़ दई कत हेत हे मानमती"

तथा इसी प्रकार की अन्य कोई रचना हो तो इससे सन्मार्ग पर लाने वाला एवं बुलाने वाला समझा जाता है तथा रसूलल्लाह (मुहम्मद साहब) तथा उनके अनुयायी जो तत्संबंधी खिलअत पहने हैं, समझे जाते हैं। "हम ने उनमें एक ऐसे हमूह को जन्म दिया जो हमारे आदेशों की शिक्षा देते हैं।" इसे हिंदवी में **दूती** कहते हैं।

मानमती से वादियों, असावधान व्यक्तियों तथा ज़िक्र से मुंह फेरने वालों की ओर संकेत होता है जिन्हें रसूलल्लाह (मुहम्मद साहब) तथा उनके अनुयायी उपदेश द्वारा मारेफ़त (ज्ञान) एवं मुहब्बत की ओर बुलाते हैं और आलस्य तथा प्रमाद से मुक्ति दिलाते हैं और सफलता एवं मुक्ति का मार्ग दर्शाते हैं और अंत में परदे के बाहर निकाल लेते हैं और ये परदे (रूहानी) श्रेणी के अनुसार कम तथा अधिक होते हैं। न.फ्स् (वासना) के परदे काम भोग तथा भक्षण हैं। हृदय का परदा ईश्वर के अतिरिक्त दूसरे का ध्यान करना है। बुद्धि का परदा वास्तविकता पर रुक जाना है। रहस्यों के संसार का परदा रहस्य की बातों के साथ रुका रहना

है। रुह का परदा मुकाशफ़ा (दैवी प्रकाशन) है और यह बारीक परदा किबरियाई (ऐश्वर्य) है। रिसालये मक्किया में इसी प्रकार उल्लेख हुआ है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **रैन मानुस** का उल्लेख हो तो उससे असावधानी की अवधि अथवा युवावस्था की अवधि की ओर संकेत होता है। कभी मनुष्य की अवस्था, कभी संसार और कभी आलमे मजाज़[६०] समझा जाता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **बासर (वासर) व भोर** अथवा इसी प्रकार के नामों का उल्लेख हो तो इससे मारेफ़त के दिनों अथवा वृद्धावस्था और कभी कभी मनुष्यों के अंत का समय, कभी कभी क़यामत के दिन और कभी कभी आलमे हक़ीक़त की ओर संकेत होता है। संभव है कि **"रैन-मानुष"** से उस समय की ओर संकेत करें जब सृष्टि की रचना न हुई थी और वासर व भोर से सृष्टि की रचना की ओर संकेत करें।

यदि हिंदवी वाक्यों में **सूरज (सूर्य) उदय** का उल्लेख हो तो इससे मुहम्मद साहब के नूर[६१] (ज्योति) के प्रकट होने की ओर संकेत होता है। "अल्लाह ने सर्वप्रथम जिस वस्तु की रचना की, वह मेरा नूर है।" कभी केवल नबूअत (नबी संबंधी नूर) के प्रकट होने की ओर संकेत करते हैं। कभी मुशाहदे (साक्षात्कार) के नूर (ज्योति) से अभिप्राय होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **धूप** का उल्लेख हो तो उससे वुजूद (अस्तित्व) नूर (ज्योति) का ओर संकेत होता है।

छंद

वह खोज करनेवाला जिसने वहदत (ऐकश्वरवाद) का निरीक्षण कर लिया है उसकी दृष्टि सर्वप्रथम वुजूद (अस्तित्व) के नूर (ज्योति) पर जाती है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **छांह** का उल्लेख हो तो उससे सृष्टि एवं दैवी सूर्य की छाया की ओर संकेत होता है। 'क्या तू अपने पालनेवाले को नहीं देखता कि उसने किस प्रकार छाया को बढ़ाया ?'

छंद

उसका दरबार एक सूर्य है। दोनों लोक उसके समक्ष मुझे सायबान ज्ञात होते हैं। कभी मोमिनों की ओर संकेत होता है जो मुहम्मद साहब के

नूर (ज्योति) का प्रतिबिंब हैं। 'मैं अल्लाह के नूर से हूँ तथा ईमान वाले मेरे नूर से हैं।'

छंद

समस्त सम्मान उसके अधीन हैं। खाकी बन्दों (मनुष्यों) का वुजूद (अस्तित्व) उसी की छाया के कारण है।

यदि **दोपहर की छांह** आए तो उससे उस चीज की ओर संकेत होता है जो पतन की ओर जा रही हो।

छंद

इन समस्त छायाओं का अन्त में पतन हो जाता है। तू ऐसी छाया की ओर दौड़ जिसका पतन नहीं है।

कभी **दोपहर** से हज़रत ख्वाजा सल्लम (मुहम्मद साहब) के समय की ओर संकेत करते हैं।

छंद

हज़रत ख्वाजा का समय दोपहर का समय था जो प्रत्येक छाया तथा अंधेरे से मुक्त था।

यदि हिंदवी वाक्यों में **शशि** व **चन्द्रमा** का उल्लेख हो तो इससे विलायते मुतलक़ (संतलोक) के नूर की ओर संकेत किया जाता है जो नबूवत के सूर्य से लाभ प्राप्त करता है और कभी मुकाशफ़े (दैवी प्रकाशन) के नूर की ओर संकेत होता है। यदि वियोग के समय **चन्द्रमा की ठंडक के गरमी में परिवर्तित होने** का उल्लेख किया जाय तो उससे भाग्य एवं विधि लेख के प्रतिकूल तथा विपरीत होने की ओर संकेत होता है। यदि सम्भोग के समय उस चन्द्रमा का उल्लेख ऐसी ठंडक के साथ हो जो स्वभाव के अनुकूल हो तो उसका तात्पर्य प्रियतम की उन कृपाओं से होता है जो आशिक़ पर की जाती हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **पवन** अथवा उसी के समानार्थक शब्दों का उल्लेख हो तो इससे उस वायु की ओर संकेत होता है जो हृदय को एक दशा से दूसरी दशा में परिवर्तित कर देती है। जैसे कि हृदय एक वृक्ष के समान है जो किसी मैदान में लगा हुआ हो और वायु उसे ऊपर नीचे पलट रही हो और कभी उस पवन की ओर संकेत होता है जो हज़रत सुले-

मान[६२] को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती थी 'और सुलेमान के लिये हवा का प्रबंध किया गया था कि प्रातःकाल एक नगर में हों तथा सायंकाल दूसरे नगर में।" कभी आराम की हवा तथा सुखदायक सुगंध की ओर संकेत होता है।

छंद

प्रातःकाल जब पवन सुखद समाचार लाए तो वह हुद हुद[६३], सुलेमान के समान है। सेबा[६४] उद्यान से सुख शान्ति के सुखद समाचार लाई है।

कभी इससे परिश्रम के कष्टों तथा असमंजस की लूह की ओर संकेत होता है।

छंद

कष्टों की तेज़ हवाओं के कारण इस उद्यान में यह नहीं देख सकते कि यहाँ गुलाब था, अथवा चमेली।

उस विषैली आंधी के कारण जो उद्यान के किनारों पर चली, यह देख कर आश्चर्य होता है कि किसी गुलाब का रंग अथवा चमेली की सुगंध कैसे शेष रह गई।

यदि हिंदवी वाक्यों में **चंदन** तथा **अगर** आदि का उल्लेख हो तो ईश्वर के दान की ठंडक की ओर संकेत होता है। "हे खुदा मुझे अपनी क्षमा की ठंडक का आनंद प्रदान कर" और कभी नूरानी (ज्योतिमय) परदों की ओर संकेत होता है।

मुझे उस सुगंध पर ईर्ष्या होती है जो तेरे शरीर से लिपट जाय।

यदि हिंदवी वाक्यों में **कँवल (कमल)** अथवा **कुमुदनी** का उल्लेख हो और वह सूर्य के अर्थ से संबंधित हो तो उससे उम्मत (मुहम्मद साहब के अनुयायी) के हृदय की ओर संकेत होता है जिन्हें नबूवत के सूर्य की ज्योति से लाभ प्राप्त होता है। यदि उसका अर्थ चंद्रमा से संबंधित हो तो किसी बहुत बड़े वली (संत) के चेलों की ओर संकेत होता है अर्थात् उसके चेले और उसपर विश्वास रखनेवाले लोग, जो चंद्रमा से प्रकाश प्राप्त करते हैं। "शेख (गुरु) अपने चेलों में उसी प्रकार होता है जिस प्रकार नबी अपने अनुयायियों में।"

यदि हिंदवी वाक्यों में **तरैयां** का उल्लेख हो तो उससे चरित्र के वे गुण समझे जाते हैं जिनका संक्षेप में इस हदीस में उल्लेख हुआ है—"अल्लाह

की आदतों से अपनी आदतें बनाओ" और कभी नबूअत के ज़ौक (आस्वादन) तथा मुकाशफ़े (दैवी प्रकाशन) की ओर संकेत होता है, जिनका मोमिन (धर्मनिष्ठ मुसलमान) पालन करते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'भोर की तरैयां'** कहा जाय तो उससे कुछ मनुष्यता के गुणों एवं मनुष्य की विशेषताओं की ओर संकेत होता है जो विलायत (संतलोक) के सूर्य के उदय होने पर स्वाभाविक रूप से विद्रोह करते हैं और उन्हें "मित्रों के अपराध" कहते हैं और वे उनके भाग्य की सुंदरता के तिल होते हैं। उस महान् परमेश्वर की ओर से जो बहुत बड़ा नीतिज्ञ है, एक शुद्ध नीति होती है। बुकेर[६५] (भगवान् उसके रहस्यों को पवित्र बनाए) ने कहा है, "कासिनी कड़वी है किंतु उद्यान से आई हुई है, अब्दुल्लाह (ईश्वर का दास) यद्यपि दोषी है किंतु मित्रों में से है। अन्य लोगों का पाप उच्च से निम्न श्रेणी की ओर लाता है और ईश्वर के मित्रों का पाप निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी की ओर ले जाता है।

यदि हिंदवी में कहे **"तुम नह भईं भोर की तरैयां"** तो यह संकेत है किसी कार्य में जिसे छिपा रखना चाहिए अथवा किसी ऐसे रहस्य के खोल देने में कलंकित होने की ओर।

यदि हिंदवी रचना में **"रैन कटी तारे गिनत"** अथवा इसी प्रकार के वाक्य कहें तो इससे किसी मित्र के अन्य मित्र की प्रतीक्षा करने की तथा आंख न झपकाने की ओर संकेत होता है।

छंद

वियोग की रात्रि की कथा कहना कौन जानता है। केवल वह जो 'सादी' के समान तारे गिने।

यदि इससे स्पष्ट शब्दों में जानना चाहो तो इस छंद से समझो।

छंद

स्मरण रहे कि सुकर्मियों की मुझसे भेंट की अभिलाषा बहुत बढ़ चुकी है और मैं उनसे मिलने का बड़ा इच्छुक हूं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"रैन गई पीतम कंठ लागें"** अथवा **"रैन बिहानी पीतम संग"** अथवा इसी प्रकार की कोई अन्य बात कहें तो इससे

इस हदीस के अर्थ की ओर संकेत होता है, "मैं अपने ईश्वर के पास रात्रि में रहता हूँ"।

यदि हिंदवी रचना में **"लालन कौ हौं देखन न दैहौं"** अथवा इसी प्रकार की कोई अन्य बात कहें तो इससे इस अर्थ की ओर संकेत होता है जो तुम इस हदीस से समझ सकते हो "मेरे मित्र मेरे शिविर के नीचे हैं। उनको मेरे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं जानता।"

छंद

सब उसके साथ हैं किंतु वह सबसे दूर है और नूर (ज्योति) के परदों के पीछे छिपा है।

कभी उन वाक्यों की ओर संकेत होता है जो अन्य लोगों की दृष्टि से छिपाए रखते हैं। इसके अतिरिक्त उन समाचारों की ओर भी संकेत होता है जिनको निहित रखते हैं।

यदि हिंदवी रचनाओं में इस प्रकार कहें **"तोई संग जाऊँ"** अथवा इसी प्रकार के अन्य वाक्य कहें तो इस बात की ओर संकेत होता है कि प्रेमी सर्वदा प्रियतम के पीछे छाया के समान चलता है। प्रेमी के समस्त कार्य तथा गीत प्रियतम के ही कार्य एवं गति होती हैं और उसे स्वयं कोई अधिकार नहीं होता। नवीन के साथ प्राचीन का कोई चिह्न शेष नहीं रहता। (इस बात की व्याख्या करने वाले के छंद नीचे दिए जा रहे हैं-)।※

छंद

मैं छाया के समान तेरे साथ चलता हूं। छाया को किसी बात के कारण पूछने का कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि मेरी क्रियायें एवं चुप रहना पूर्ण रूपेण तेरी ही ओर से है तो तू मुझपर सदाचार एवं दुराचार का आरोप न लगा।

यदि तू मेरा अपराध देखे तो मेरे दोषों का उल्लेख मत कर। तूने ही तो मेरा सिर मेरे गले से निकाला है।

यदि हिंदवी रचना में **"अवधि बदि गई मोसों"** अथवा इसी प्रकार का उल्लेख हो तो इससे "अलस्त[६६]" के वचनों की ओर संकेत होता है जब कि आत्माओं ने 'बला'[६७] कहकर स्वीकृति का वचन दिया था।

※ मीर अब्दुल वाहिद के छंद।

यदि हिंदवी रचनाओं में **'अनत रति मानी'** अथवा इसी प्रकार की अन्य कोई बात हो तो इससे इस बात की ओर संकेत होता है कि बंदे छल तथा अभिमान के संसार पर विश्वास रखे बिना इबादत (उपसना) किए जाएं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"तहीं सिधारो जहां रति मानी"** तो इससे इस आयत के अर्थ की ओर संकेत होता है "अपनी पीठ के पीछे लौटो तथा प्रकाश ढूंढ़ो।" हदीस में आया है "मनुष्य अपने प्रियतम के साथ रहता है।"

छंद

संसार में जिस वस्तु से तेरा ध्यान संबंधित रहता है सर्वदा तेरे संमिलन का मार्ग वही वस्तु होती है।

यदि हिंदवी में कहें **"रति के चिह्न सब प्रकार के भये"** तो उससे उस दिन की ओर संकेत होता है जिस दिन छिपे हुए रहस्य जांचे जयेंगे। यदि इससे भी स्पष्ट सुनने की इच्छा हो तो इस पद्य में सुनो।

पद्य

समस्त एकत्र की हुई बातें तथा कार्य क़यामत में प्रगट होंगे।

जब तूने अपने वस्त्र से अपने शरीर को नग्न कर लिया तो दोष तथा गुण एक ही बार प्रकट हो जायंगे।

तेरे शरीर में किसी प्रकार का कोई दोष न होना चाहिए क्योंकि (उस हालत में) इसमें जल के समान रूप का प्रतिबिंब स्पष्ट नहीं हो सकता।

इसमें इस स्थान पर समस्त रहस्य प्रकट हो जायंगे। इस विषय में 'जिस दिन छिपे हुए रहस्य प्रकट हो जायेंगे' की आयत पढ़नी चाहिए।

यदि हिंदवी में इस प्रकार का कोई लेख हो **"अधर कपोल नैन आनन उर कहि देत रति के आनंद"** तो इससे इस बात की ओर संकेत होता है कि "शरीर के अंग अपने कार्य के स्वयं साक्षी होंगे" जैसा कि इस आयत में है। "उस दिन (क़यामत) उनके हाथ तथा पैर एवं उनकी जिह्वा उन बातों के लिये जो वे कर रहे हैं साक्षी होंगे।"

यहां यह बात जान लेनी चाहिए कि जो बातें भूत काल में विलीन हो चुकी हैं अथवा भविष्य में जिनके लिये बचन दिया गया है वे सब सूफ़ियों के

लिये इसी समय वर्त्तमान हैं क्योंकि वे समय तथा स्थान के प्रतिबंध से मुक्त हो चुके हैं और अज़ल (अनादि) एवं अबद (अनंत) से मिल चुके हैं।

छंद

हे सूफ़ियो ! दिन केवल आज ही का दिन है। भूतकाल तथा भविष्य का चिह्न कहाँ है ! जो ईश्वर से एक क्षण भी असावधान नहीं रहता उसका भविष्य तथा भूतकाल सभी वर्त्तमान (के समान) होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में इसी प्रकार का लेख हो '**मैं पटई तौ लैन सुधि परि मैं रति मानी जाय**।" तो इससे उस समूह[६१] पर कोप की ओर संकेत होता है जिन्हें मारेफत (ज्ञान) तथा प्रेम के पूर्ण होने के उपरांत मुहम्मद साहब के नायेब होने का वस्त्र पहना कर दोषियों को पूर्ण बनाने के आशय से लौटा दिया जाता है। अब उनका हृदय किसी वस्तु की ओर कुछ भी आकर्षित हो जाय तो उन्हें महान् ब्रह्म की लज्जा इस प्रकार की चेतावनियों एवं पदवियों से संबोधित करती है। परमेश्वर के यह शब्द याद करो "ताकि वह सच्चों से उनकी सत्यता के विषय में प्रश्न करे" और "सच्चों को इस बात का भय दिलाओ कि मुझे लज्जा आती है।" लज्जा का संघर्ष बड़ा ही उत्कृष्ट संघर्ष है और प्रेम की लज्जा बड़ी ही उत्तम लज्जा है अतः उसके गीत परदे में गाओ "**झगड़ों की ल्यों सरिजन**" (झगरो कीनौं साजन ?) अर्थात् माशूके हक़ीक़ी (परम प्रियतम) ने अपने आशिक़ के साथ एक मस्ती का युद्ध छेड़ रखा है जिससे आशिक़ को सन्मार्ग दर्शाये। यह समाचार तो बुरा है किंतु एक विचित्र रहस्य है।

छंद

माशूक़ के मुड़े हुए केशपाशों की व्याख्या संक्षेप में नहीं हो सकती क्योंकि वह कथा ही बड़ी लंबी है।

यदि भागे तो इस वाक्य की लज्जा शरण न देगी। "भागने के स्थान कहां हैं ?" और यदि आलिंगित रहे तो "अल्लाह तुमको अपने नफ़्स (व्यक्तित्व) से भय दिलाता है।" के भय ने मार्ग रोक रखा है अतः विवश क्या करे। यदि बैठ जाए तो कहेंगे "अल्लाह से आशा लगा कर खड़े हो जाओ" और यदि खोज में उठ खड़ा हो तो कहेंगे "तुम कहां जाते हो ? खोज वर्जित है तथा द्वार बंद है।"

छंद

यदि मैं उसकी खोज़ में जाऊँ तो आपत्तियां उठती हैं और यदि खोज न करूं और बैठ रहूँ तो (वह) शत्रुता के लिये उठ खड़ा होता है। यदि निराश हो जाय (जाऊँ) तो कहते हैं "ईश्वर की दया की ओर से निराश न हो" और यदि आशा लगाए रखे तो कहते हैं "क्या तुम्हें अल्लाह के मक्र (युक्ति) का भय नहीं रहा ?" यदि मारेफ़त (ज्ञान) के निकट आएँ तो कहते हैं "तुमने अल्लाह का यथारूप संमान नहीं किया।" इस तुच्छ कण (मनुष्य) की आकुलता बड़ी ही विचित्र है। जिसके भी साथ जाय और जिसकी ओर आकर्षित हो उसे सफल नहीं होने देते और कहते हैं।—

छंद

तू जिससे भी प्रेम करे, समझ ले कि तुझे सुख न मिलेगा। मैं तुझे ऊपर उठाता तथा नीचे गिराता ही रहूँगा क्योंकि तू तो मेरा ही है।

"आध लैहौं बटाय"

छंद

हे मित्र तेरा हृदय दुख से इसलिये दो टुकड़े हो गया है कि आधा हमारे साथ रहे तथा आधा संसार के साथ।

यदि तुम नबूबत अथवा उसके नायब होने के कारण सृष्टि की ओर आकर्षित हो तो विलायत (संतलोक) के कारण सर्वदा हमारा ध्यान करते रहो। अपने हृदय को किसी को न सौंपो, अन्यथा हमारी लज्जा के बल्ले से गेंद के समान सर्वदा लुढ़कते रहोगे। आधा अर्थात् हृदय का आधा भाग हमारे प्रेम का भाग है और दूसरा आधा भाग जो प्रकट है उसे हम प्राणियों का हिस्सा बना देते हैं। "अल्लाह उन बंदों के साथ है, जिनके शरीर संसार में हैं तथा उनके हृदय अल्लाह के पास हैं।"

छंद

हे ईश्वर तू ने मुझे संसार को सौंप दिया है। हृदय जो तेरे पास है, कोप के कारण दो टुकड़े हो गया है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"समीप अथवा संग"** अथवा ऐसे ही अन्य शब्दों का उल्लेख हो जो संमिलन के समानार्थक हों तो उससे उन सीमाओं के समाप्त होने की ओर संकेत होता है, जो अनात्मवाद में घिरी हुई हैं।

छंद

यहां संमिलन कल्पना के उठा देने का नाम है। यदि कल्पना सामने से हट जाए तो वही संमिलन है।

यह केवल सीमा निर्धारित करना है, जो अस्तित्व से पृथक् है कि न खुदा बंदे के साथ हुआ और न बंदा खुदा के साथ।

कभी इस शब्द से संबंधों तथा बंधनों के तोड़ डालने की ओर संकेत होता है।

छंद

संबंध एक परदा है तथा उसका कोई फल नहीं। यदि तू संबंधों को तोड़ देगा तो संमिलन हो जायगा।

यदि हिंदवी शब्दों में **विरह, वियोग** अथवा उसके समानार्थक शब्दों का उल्लेख हो तो उससे हृदय की वास्तविक बातों से वियोग अथवा खुदा के जिक्र (स्मरण) की ओर से असावधान हो जाने की ओर संकेत होता है। इसकी तीन श्रेणियां हैं (१) सर्वसाधारण का वियोग (२) विशेष व्यक्तियों का वियोग (३) सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का वियोग। सर्वसाधारण का वियोग ईश्वर के ध्यान से असावधानी करना है। यह विशेष व्यक्तियों के अनुसार भी कुफ्र[७१] है।

छंद

जो व्यक्ति ईश्वर के ध्यान से एक क्षण के लिये भी असावधान हो जाय वह उसी समय काफ़िर हो जाता है किंतु निहित रहता है। यह असावधान रहना चलता रहे तो इस्लाम का द्वार उसके लिये बंद हो जाता है।

विशेष व्यक्तियों का वियोग मध्य में (किसी समय) अपनी ओर एक क्षण के लिये दृष्टिपात करना है।

सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का वियोग यह है कि वह आरिफ़ (ज्ञानी) जो इर्फान (ज्ञान) की सर्वोच्च श्रेणियों तक पहुँच गया हो और यदि उसका व्यक्तित्व ईश्वर के अस्तित्व में और उसके गुण ईश्वर के गुण में विलीन हो चुके हों और वह महव (मिटजाने) एवं फ़ना (विलीन) होने की अन्तिम श्रेणी को प्राप्त हो चुका हो, फ़ना (विलीन) होने के उपरांत बक़ा (जीवन) की श्रेणी तक उन्नति कर चुका हो, किंतु उस नाम तथा व्यक्तित्व के कारण

जो वह रखता है और जो उससे संबंधित है, सर्वश्रेष्ठ लोगों के लिये यही नाम तथा व्यक्तित्व वियोग है। "क्या अच्छा होता मुहम्मद का रब मुहम्मद को पैदा न करता।" अर्थात् क्या अच्छा होता कि नाम तथा व्यक्तित्व भी मध्य में न होते।

छंद

सिर व गले के कारण ही बिना चिह्न का होना है। मिट मिट कर मिट जाना ग़ैब (परोक्ष) के भीतर ग़ैब है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **गर्भ व अंगन** का उल्लेख हो तो इससे अंतरंग एवं बहिरंग अथवा रूप एवं वास्तविकता की ओर संकेत होता है।

अध्याय (२)

उन संकेतों तथा वाक्यों की व्याख्या में जो विशुन पद (विष्णु पद) में आते हैं

यदि कोई कहे कि अपवित्र काफ़िरों के नाम आनन्द लेकर सुनना एवं शरा के विरुद्ध लेखों पर आवेश में आकर नृत्य करने लगना कहां से उचित हो गया तो हम कहेंगे उमर खत्ताब[१] (अल्लाह उनसे सन्तुष्ट रहे) से लोगों ने सुनकर यह बात कही कि "(क्या) .कुरान में शत्रुओं का उल्लेख तथा क़ाफ़िरों के प्रति संबोधन नहीं है ?"

और यह उस संबंध की बात है कि ऐनुलकुज़ात[२] ने फरमाया कि "फ़िरऔन[३] व हामान[४] व कारून[५] के नाम अबूजेहल[६] ने .कुरान में देखे तथा .कुरान के वाक्य सुने।" अतः जब यह संभव है कि कुछ लोग शत्रुओं के उल्लेख, काफ़िरों से संबोधन .कुरान में सुन सकें तो यह भी संभव है कि कुछ लोग अपवित्र क़ाफ़िरों का वर्णन संगीत के रागों में सुन सकें।

यदि हिंदवी वाक्यों में कृष्ण अथवा उनके अन्य नामों का उल्लेख हो तो इससे रिसालत पनाह सल्लम (मुहम्मद साहब) की ओर संकेत होता है और कभी इसका केवल मनुष्य से तात्पर्य होता है। कभी इससे मनुष्य की वह वास्तविकता समझी जाती है जो परमेश्वर के ज़ात (सत्ता) की वहदत (एक होना) से संबंधित होती है। कभी इबलीस से तात्पर्य होता है। कभी उन अर्थों की ओर संकेत होता है जिनका अभिप्राय बुत (मूर्ति) तर्सा बचा (ईसाई बालक, माशूक) तथा मुग़बचा (अग्नि पूजक का पुत्र, माशूक़) से होता है, जैसा कि इस मसनवी से ज्ञात होता होगा।

मसनवी

बुत तथा तर्सा बचा खुले हुए नूर (ज्योति) हैं जो रूपवानों के मुख से चमकते रहते हैं। यह प्रकाश हृदयों का विश्राम स्थान बन जाता है। कभी गायक बन जाता है और कभी साक़ी।[८]

यदि हिंदवी वाक्यों में **गोपी** तथा **गूजरी** का उल्लेख हो तो इससे फ़रिश्तों की ओर संकेत किया जाता है और कभी इससे मनुष्य जाति की वास्तविकता की ओर उसके गुणों की वहदत (एक होने) के अनुसार संकेत होता है और यदि बुद्धि की आँख इन संकेतों में कुछ अंतर देखे तो वह अन्तर बुद्धि की आँख है। इन विश्वासों तथा संकेतों में कोई अंतर नहीं। यदि तुम जानना चाहो तो लोग कहते हैं कि एक बार शेख़ शिबली[१] ने यह छंद कहनेवालों के द्वारा सुना। मैं सलमा के विषय में प्रश्न करता हूँ और संसार में कोई उसका उत्तर देनेवाला नहीं। यहाँ यह स्पष्ट बात है कि सलमा एक स्त्री का नाम है और शिबली का सलमा से अभिप्राय ईश्वर से है। इस क़ौम के विश्वासी (सूफ़ी) इस प्रकार के अनेक संकेत तथा प्रमाण रखते हैं और इन संकेतों के कारण भी उनके निकट अनेक प्रकार के हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **कुबरी** तथा **कुब्जा** का उल्लेख हो तो इससे मनुष्य की ओर उसके दोषों तथा त्रुटियों के अनुसार संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **ऊधो** (**उद्धव**) का उल्लेख हो तो इससे रिसालत पनाह सल्लम (मुहम्मद साहब) की ओर संकेत होता है। कभी इसका तात्पर्य उनके अनुयायियों से होता है जो सेवक तथा स्वामी के मध्य में अभिकर्त्ता हैं कभी इस शब्द से जिबरील (फ़रिश्ते) की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **पतिया** आए तो इससे ख़ुदा के यहाँ से उतरी हुई पुस्तक की ओर संकेत होता है और कभी बंदों के उन नाम-ए-आमाल (कर्म-पंजिका) की ओर संकेत होता है जो क़यामत के दिन प्रकट होंगे और कभी (ख़ुदा के) उस फ़रमान (आदेश) की ओर संकेत होता है जो स्वर्ग में भेजा जाएगा कि 'हे मेरे बंदे तू हूरों (स्वर्ग की अप्सराओं) और महलों में व्यस्त हो गया और मेरे दर्शन को भूल गया।' कभी इस शब्द से समस्त आलमे वुजूद (सृष्टि) की ओर संकेत होता है जो 'जौहर' (तत्व) अर्ज़ (दृश्यमान) अमिश्र तथा मिश्रित का संग्रह होता है और यही परमेश्वर की पुस्तक है।

पद्य

जिसकी रूह तजल्ला (ज्योति) में रहती है, उसके निकट समस्त संसार परमेश्वर की पुस्तक है।

उर्ज़ (दृश्यमान) एराब (ज़ेर, ज़बर, पेश) तथा जौहर (तत्व) अक्षर के समान हैं। श्रेणियाँ आयतें तथा वक़्फ़ (ठहरने के स्थान) हैं।

किंतु एक प्रकार से संसार की पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ मारेफ़त (ज्ञान) की एक पुस्तक है और एक प्रकार से प्रत्येक पृष्ठ तथा सीमा संसार की पुस्तक का एक वाक्य है।

छंद

अंतरंग एवं बहिरंग प्रत्येक को तू (ईश्वर का) अस्तित्व समझ ले और समस्त वस्तुओं को क़ुरान एवं उसकी आयतें समझ ले। और कभी इस शब्द से उन दिलों की ओर संकेत होता है जिनमें ईमान लिख दिया गया है। 'ये ही वे लोग हैं जिनके हृदय में ईमान लिखा गया है।'

जिस दिन फूलों को उत्पन्न किया गया उसी दिन दिलों में ईमान लिखा गया।

यदि तू उस लेख को एक बार पढ़ ले, तो जिस वस्तु को भी पढ़ेगा समझ लेगा।

यदि हिंदवी वाक्यों में **ब्रज अथवा गोकुल** का शब्द आए तो उससे आलमे नासूत और कभी कभी आलमे मलकूत तथा कभी कभी आलमे जबरूत की और संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **जमुना** अथवा **गंगा** अथवा **कालिंद्री (कालिंदी)** अथवा इसी प्रकार का उल्लेख हो तो इससे वहदत (एकेश्वरवाद) की नदी की ओर संकेत होता है और कभी मारेफ़त (ज्ञान) के समुद्र की ओर, और कभी हुदूस (आदि रचना) तथा इमकान (संभवाना) की नहर की ओर संकेत होता है। निस्संदेह जन्म पानेवाली वस्तुएँ लहरों तथा नहरों के समान हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मुरली** अथवा **बाँसुरी** अथवा इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इससे भाव के अभाव में प्रकट होने की ओर संकेत होता है।

छंद

समस्त संसार उसके गीत की आवाज है। किसने ऐसी लंबी आवाज़ सुनी है। और कभी 'हमने उस आदम में अपनी रूह फूंकी' के संगीत की

ओर संकेत होता है और कभी "कुन"[११] (क्रिया) के संगीत की ओर संकेत होता है।

छंद

सृष्टि तथा अम्र (आदेशों) का संसार एक सांस से प्रकट होते हैं क्योंकि यह श्वास जब आया, उसी समय चला गया।

उसी श्वास से दोनों लोकों का जन्म हुआ और उसी श्वास से आदम के प्राण प्रकट हुए और यह श्वास केवल एक राग है। इसमें कोई अक्षर कोई आवाज़ अथवा आवाज़ का खिंचाव एवं टूटना नहीं है।

छंद

आत्मा का संगीत आवाज़ तथा अक्षर नहीं हैं क्योंकि उसके प्रत्येक परदे में एक अनूटा रहस्य निहित है।

यदि हिंदवी वाक्यों में कहे "गांग (गंगा) पार डफ़ बाँसुरी बाजै" तो इससे इस अर्थ की ओर संकेत होता है कि हुदूस (आदि रचना) तथा इमकान (संभावना) की नदी के अतिरिक्त इश्क (प्रेम) तथा हुस्न (सौंदर्य) के अनेक राग हैं। और आत्मा तथा माशूक के अनेक निहित संकेत हैं और इन रागों को तू उस समय तक न सुनेगा और न देखेगा जब तक हुदूस (आदि रचना) की नदी पार न कर लेगा।

छंद

संसार संगीत, मस्ती तथा शोर से परिपूर्ण है किंतु अंधा दर्पण में क्या देख सकता है?

गानेवाला तो कभी चुप नहीं रहता किंतु कान तो प्रत्येक समय खुला नहीं रहता।

यदि हिंदवी वाक्यों में बीन तथा किन्नर अथवा इसी प्रकार के शब्द आएँ तो इनसे उन ग़ैबी (परोक्ष संबंधी) घटनाओं की ओर संकेत होता है जो आरिफ़ों (ज्ञानियों) को आँख से दिखाई देते हैं तथा उन इलहामों (दैवी प्रेरणा) की ओर संकेत होता है जिनमें कोई संदेह नहीं।

छंद

प्रेम की मिज़राब[१२] एक विचित्र प्रकार के स्वर का बाजा रखती है। जिस राग को भी इस मिज़राब से निकाला जाय वह एक नवीन ढंग का होता है।

यह समझ लो कि **किन्नर, बीन** तथा **बांसुरी** आदि से जो राग निकलता है वह किसी मनुष्य की अंगुलियों तथा अंगों की क्रिया के बिना नहीं निकल सकता और इन वस्तुओं की क्रिया मनुष्य के हृदय के हिलने के बिना संभव नहीं। हृदय का हिलना गुरु के हिलाए बिना असंभव है और इसमें कोई आपत्ति नहीं।

छंद

मेरे हाथ से कोई ऐसा रूप नहीं बन सकता जिसके चिह्न ऊपर के गुरु (ईश्वर) ने न बनाए हों।

इस स्थान से समस्त रागों के अर्थ समझे जा सकते हैं।

पद्य

मेरे हृदय ने मेरे लिये एक गीत गाया और जैसे उसने गाया वैसे ही मैंने भी गाया और यह राग जहाँ थे वहीं मैं भी था और जहाँ मैं था वही ये राग भी थे।

बाँसरी जो प्रत्येक समय गाने गाती है वह वास्तव में बाँसुरी बजानेवाले के श्वास के द्वारा गाती है।

प्रेम बाँसुरी बजाने वाले के अतिरिक्त और कुछ नहीं और हम बाँसुरी के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। वह एक क्षण भी हमारे बिना नहीं हैं और हम उसके बिना नहीं हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **कंस** का उल्लेख हो तो उससे नफ़्स (वासना) की ओर संकेत होता है और कभी खन्नासा (शैतान) की ओर, और कभी इबलीस की ओर संकेत होता है और कभी ख़ुदा के क़हर (कोप) व जलाल (ऐश्वर्य) वाले नामों की ओर संकेत होता है और ऐसा भी होता कि इनका तात्पर्य पिछले पैगंबरों की शरीअत से हो।[13]

यदि हिंदवी वाक्यों में **शेषनाग*** का उल्लेख हो अथवा इसी प्रकार के अन्य नामों की चर्चा हो तो उसका तात्पर्य नफ़्से अम्मारा (काम वासना) से होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मधुपुरी** अथवा **बिंद्रावन (वृंदावन)** अथवा **मधुवन** के शब्द अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्द आएं तो इससे उन अर्थों

---

*पुस्तक में 'मार' है जिसका अर्थ नाग होता है।

की ओर संकेत होता है जिनके लिये इस क़ौम (सूफ़ियों) में ऐमन की घाटी के शब्द का प्रयोग होता है।

छंद

कुछ समय के लिये ऐमन की घाटी में आ जा और निःसंदेह यह आवाज़ सुन कि 'मैं ही अल्लाह हूँ।'

ऐमन की घाटी में आ। वहाँ अचानक एक वृक्ष तुमसे कहेगा 'मैं ही अल्लाह हूँ।'

समझ लो कि इन लोगों (सूफ़ियों) की परिभाषा में ऐमन की घाटी का तात्पर्य हृदय को पवित्र बनाने तथा आत्मा को प्रकाशमान करने के नियमों से है। और इसी नियम से ईश्वर द्वारा लाभ अनिवार्य रूप से प्राप्त होता है और कभी ऐमन की घाटी का अभिप्राय गोकुल तथा व्रज के समानार्थक शब्दों से भी होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मथुरा** की चर्चा हो तो इससे मारेफ़तवालों (ज्ञानियों) के अस्थायी मक़ाम (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है क्योंकि मारेफ़तवालों (ज्ञानियों) के दो मक़ाम हैं। एक अस्थायी, यह मक़ाम (लक्ष्य) आलमे नासूत में है और दूसरा स्थायी मक़ाम है और वह आलमे मलकूत तथा आलमे जबरूत में है और जब आध्यात्मिक यात्रा में अस्थायी मक़ाम (लक्ष्य) से चलते हैं तो स्थायी मक़ाम (लक्ष्य) में प्रविष्ट होते हैं। यह वाक्य "जो मनुष्य दो बार जन्म न ले वह बलन्दी के अध्यात्म में प्रविष्ट न होगा।" इस अर्थ की व्याख्या करता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **द्वारिका** की चर्चा हो तो उनसे आरिफ़ों (ज्ञानियों) का स्थायी स्थान तथा उनके लौटकर जाने की मंज़िल समझी जाती है और यह मक़ाम (लक्ष्य) एक रोक तथा सीमा है। पूर्ण व्यक्तियों की यात्रा तथा उनके कर्म एवं ज्ञान वहां तक पहुँच सकते हैं। वह मकाम नामों तथा श्रेणियों की ऐसी सीमा है कि इससे ऊंचा अन्य कोई लक्ष्य नहीं। "जिसने तुझ पर कुरान अनिवार्य किया है वह तुझे लौटने के स्थान पर वापस लाने वाला है"। संकेतवाले लोगों (ज्ञानियों) की ज़बान में यहां शब्द मआद (लौटने का स्थान) से वही मक़ाम (लक्ष्य) समझा जाता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **जसोधा (यशोदा)** की चर्चा हो तो इसका तात्पर्य खुदा की दया तथा कृपा का वह संबंध समझा जाता है जो उसकी ओर से संसार वालों के लिये पूर्व ही से निश्चित है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **नंद महर** का उल्लेख हो तो इससे रिसालत पनाह सल्लम (मुहम्मद साहब) की ओर संकेत होता है और कभी इससे ईश्वर की सर्वदा प्राप्त होनेवाली कृपा, दया तथा दान भी समझे जाते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **गोरस दहिग्व** (दही) **महिग्व** (मही) तथा **दूध** एवं इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इससे नाना प्रकार की इबादतों (उपासनाओं) तथा आज्ञाकारिता की ओर एवं नाना प्रकार के गुणों और उत्कृष्ट कार्यों की ओर संकेत होता है कि जो **"गोबर तथा रक्त"** अर्थात् अतिशयोक्ति एवं अल्प के मध्य से शुद्ध एवं उत्कृष्ट होकर निकलते हैं। अल्लाह का कथन है "निःसंदेह तुम्हारे लिये चतुष्पद शिक्षा ग्रहण करने का साधन हैं। हम तुम्हें वह वस्तु पिलाते हैं जो उनके शरीरों के भीतरी भागों में हैं, गोबर तथा रक्त के मध्य में शुद्ध और पीने वालों के लिये स्वादिष्ट दूध, और यह श्रेणी निष्ठा की मंज़िल है जैसा कि शफ़ीक़ (अल्लाह उनसे संतुष्ट रहे) से निष्ठा के विषय में पूछा गया तो उन्होंने कहा "निष्ठा कर्म को दोषों से पृथक् पहचान लेने का नाम है जैसा कि दूध गोबर तथा रक्त के मध्य से पहचाना जा सकता है।"

यदि हिंदवी वाक्यो में **नैनों** का उल्लेख हो तो इससे प्रार्थना एवं विनति के मक़ाम (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है क्योंकि प्रार्थना इबादतों (उपासना) का सार है, जिस प्रकार घी, दूध तथा दही का सार है। प्रार्थना का मक़ाम (लक्ष्य) सांसारिक जीवों एवं नफ्स से पवित्रता है।

छंद

जिस व्यक्ति ने यह पवित्रता प्राप्त की वह निःसंदेह प्रार्थना के योग्य हो जाता है।

यदि हिंदवी लेखों में **"बेचन जाय"** अथवा **"दुहावन जाय"** अथवा **"नीर भरन जाय"** अथवा इन्हीं के समानार्थक वाक्यों का प्रयोग हो तो इससे नवफ़िल[१४] तथा वजीफे[१५] पढ़ने की ओर संकेत होता है क्योंकि इनके द्वारा बंदे (दास) अल्लाह के निकट पहुँच जाते हैं "बंदा नवाफ़िल

पढ़ने के कारण निरंतर मुझसे निकट होता रहता है यहां तक कि मैं उससे प्रेम करने लगता हूँ।"

और कभी इससे उन मुजाहदों (दमन) तथा रियाज़तों (तपस्याओं) की ओर संकेत होता है जो ज़ाहिरी (बहिरंग) तथा बातनी (अंतरंग) संबंध को त्यागकर की जाती हैं। क्योंकि यह मुजाहदे (दमन) तथा रियाज़तें भी ईश्वर की निकटता एवं उसके द्वारा संमानित होने का साधन होती हैं। "जो मुझसे एक बित्ता निकट हुआ, मैं उससे एक गज़ निकट हो जाता हूँ।"

यदि हिंदवी वाक्यों में **"कान्ह घाट रूंधो"** अथवा **"कन्हैया मारग रोकौ"**

अथया इसी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग हो तो इससे इबलीस के नाना प्रकार से मार्ग-भ्रष्ट करने की ओर संकेत होता है।

छंद

माशूक ने मुझ से कहा कि "मेरे द्वार पर बैठ जा और जिसको मेरा रहस्य ज्ञात न हो उसे भीतर प्रविष्ट न होने दो।

और कभी (अल्लाह के जलाल (ऐश्वर्य) संबंधी वाक्यों की ओर संकेत होता है और यह कोप से संबंधित होते हैं।

छंद

ईश्वर के अस्तित्व का नूर (ज्योति) उन वस्तुओं में प्रवेश नहीं करता जिन्हें उसने प्रकट किया है क्योंकि उसके जलाल (ऐश्वर्य) संबंधी वाक्य कोप से परिपूर्ण होते हैं।

बुद्धि को त्याग दे और ईश्वर के साथ सर्वदा रहा कर क्योंकि चिमगादड़ की आखें सूर्य का सामर्थ्य नहीं रखतीं।

और कभी इन वाक्यों के दूरबाश[१६] की ओर संकेत होता है "ढूंढ़ने वाला लौटा दिया गया तथा द्वार बंद कर दिया गया"।

छंद

जब तक तुम पैरों तथा सिर से दौड़ रहे हो, अपने मार्ग पर चलो। तुम इस गली के पुरुष नहीं हो।

जब तक अज़ल (अनादि) तथा अबद (अनंत) एक स्थान पर नहीं मिलते, तो कुछ अधिक विचार न करो क्योंकि द्वार बंद है।

और कभी इनसे सांसारिक माशूकों पर आसक्त होने की ओर संकेत होता है। जो इबादत (उपासना) तथा सदाचार में बाधक होते हैं।

छंद

किंतु जब तक तुम प्रियतम के होंठ तथा प्याले की अभिलाषा करते हो तब तक इस बात की लालसा न करो कि दूसरे कार्य भी कर सकोगे।

और कभी इसके विरुद्ध डाकुओं की शुद्धि से तात्पर्य होता है और उसका अर्थ यह है कि हमने सांसारिक माशूकों से आनंद प्राप्त न किया।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"दान"** का उल्लेख हो तो ईश्वर की इबादत (उपासना) में बंदों (दासों) से निष्ठा की मांग की ओर संकेत होता है। "निष्ठावान बड़े संकट में हैं। कर्म में लक्ष्य की सत्यता की ओर संकेत होता है।" खुदा सच्चों से उनकी सचाई के संबंध में प्रश्न करेगा। किसी आलिम (आचार्य) तथा आबिद (उपासक) की निष्ठा के बिना मुक्ति नहीं, तथा नीयत (अभिप्राय) की सत्यता के बिना छुटकारा नहीं। शरीअत का आदेश है कि सत्यता ही मुक्ति प्रदान करती है। संक्षेप में जो नक़्द धन तथा सामग्री तेरे पास है उसके लिये एक कसौटी, परखनेवाला अथवा परीक्षा करनेवाला अवश्य होगा। "छल मत कर कारण कि परखने वाला बड़ा जानकार है।" यह जानकार परखनेवाला किसी नक़्द को परीक्षा किए बिना नहीं छोड़ता किंतु एक उपाय है कि तू समस्त नक़दी को संबंध विच्छेदन के अनुसार तौहीद (एकेश्वरवाद) को सौंप दे और समस्त सामग्री खज़ानों, कर्मों तथा दशाओं से दरिद्र बनकर (त्यागकर) निकल आ। उस समय तेरे पास कुछ न होगा और उजाड़ ग्राम पर कर नहीं लगाया जाता।

छंद

जब तू दीन अवस्था को प्राप्त हो जाएगा तो तुझ पर कोई अर्थ दंड न होगा। और मुझसे सुन कि दीन अवस्था वालों का कोई निसाब[१७] नहीं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"लार जबान कोहीं"** (?) अथवा इस प्रकार का होगा—**"काहू की बांह मरोरी, काहू के कर चूरी फोरी, काहू की मटकिया ढारी, काहू की कंचुकी फारी (फाड़ी,"** तो इससे उस व्यंग्य के अर्थ की ओर संकेत होता है "क्या उसमें ऐसा खलीफ़ा बना रहा है जो इस भूमि पर फ़साद करेगा और बड़ा रक्तपात करेगा।" कभी-कभी इसमें नाना प्रकार के अप्राकृतिक कार्यों तथा चमत्कारों की ओर संकेत होता है जो मनुष्य की विशे

षता हैं। कभी इस आयात के अर्थ की ओर संकेत होता है 'तेरे संमान की शपथ मैं इन सबको मार्गभ्रष्ट करूँगा'[१८] कभी इस आयत के अर्थ की ओर संकेत होता है 'नित्य वह एक नई शान में होता है।' अर्थात् एक ही गुरु है जो कि छाया तथा विचार के परदे के पीछे अपने परस्पर विरोधी रूप तथा आकृति दिखाता है।

छंद

चंद्रमा तथा माशूक भिन्न भिन्न शान तथा दशाएँ प्रकट करते हैं किंतु उस प्राण (प्रियतम) की शान प्रत्येक शान में लक्षित है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **जसोधा (यशोदा)** के मुख से इस प्रकार के वाक्यों का उल्लेख हो **'यह बालक मेरा कछू न जान'** या कहें **'कन्हैया मेरो बारो तुम बाद लगावत खोर'** तो इससे इन दो आयतों के अर्थ की ओर संकेत होता है 'मनुष्य निर्बल उत्पन्न किया गया है' और निस्संदेह वह अत्याचारी तथा मूर्ख है'।

खोज तथा मनन करने वाले कहते हैं कि अल्लाह ने अपने बंदों के साथ अत्यधिक अनुकम्पा के कारण उन बंदों को निर्बलता तथा मूर्खता से संबंधित किया है जिससे यदि इबादत (उपासना) करने में कोई कमी करे अथवा न.फ्स (वासना) एवं कामनाओं के पीछे पड़कर उसकी दशा में कोई दोष आ जाय तो अल्लाह की अनुकंपा की ज़बान तुरंत उसकी ओर से प्रत्युत्तर प्रस्तुत कर देगी और वह अपनी दया की ज़बान से कह देगा 'मैंने उसको पूर्व ही से निर्बल, अंधकार में, एवं मूर्ख पैदा किया है।'

'तेरी दया एवं अनुकंपा, सबकी ओर से प्रत्युत्तर प्रस्तुत कर देती है।'

यदि हिंदवी रचनाओं में **'ग्वाल गायन चरावें'** अथवा इसी प्रकार के वाक्य कहें तो इससे इस बात की ओर संकेत होता है कि संतान गउओं तथा बकरियों के समान हैं और घरवाले चरवाहे के समान हैं। 'तुम में से प्रत्येक चरवाहा है और प्रत्येक से उसकी प्रजा के विषय में प्रश्न किया जायगा।' कभी इस बात की ओर संकेत करते हैं 'शरीर की भुजाएँ तथा अंग पशुओं के समान हैं तथा सन्मार्ग पर ले जाने वाली बुद्धि चरवाहे के समान है।' कभी इस अर्थ की ओर संकेत होता है कि 'फ़साद पैदा करने वाले बकरियों के समान हैं और हृदय उनका रक्षक है।' हज़रत अली ने कहा है 'मैं तथा मेरा न.फ्स केवल बकरियों के चरवाहे के समान हैं। जब मैं एक ओर से उनकी रक्षा करता हूँ तो वे दूसरी ओर से भागती हैं। 'कभी उम्मत

(अनुयायी) को बकरियों के समान कहते हैं और नबियों को रक्षक के स्थान पर समझते हैं और कभी इस अर्थ की ओर संकेत करते हैं कि अल्लाह कसरत (प्रचुरता) को वहदत (केवल) में पालता है और वहदत कसरत में चलती फिरती दृष्टिगत होती है। यह मोती के समान है और वह बहने वाली नहर के समान।

छंद

सर्वदा अल्लाह की अनुकंपा अपनी शान में प्रकाश दिखाती तथा प्रकट रहती है।

उस ओर से वह आविष्कार करता तथा परिपूर्ण रहता है तथा इस ओर से वह प्रत्येक समय परिवर्त्तनशील रहता है। यदि ऐसे अवसरों पर तुम्हारे हृदय में यह संदेह उत्पन्न हो कि 'ग्वाल' शब्द से अल्लाह की वहदानियत (अद्वैत-भाव) की ओर संकेत करना अथवा हादिस (पैदा होने वाली चीजों) से क़दीम (जो आरंभ से हों) का अर्थ समझना अप्रमाणित बात है तथा इसका कोई प्रमाण नहीं, तो इसका मैं उत्तर दूंगा कि इस समूह (सूफियों) के निकट जो कुछ भी मजाजी संसार (इस दुनिया) में होता है उसके लिये निःसंदेह एक हक़ीक़त (वास्तविकता) है। अतः यदि मजाज़ (काल्पनिक) से हक़ीक़त (वास्तविक) की ओर संकेत करें तो कोई आपत्ति नहीं क्योंकि मजाज़, हक़ीक़त का पुल है और विशेष कर इस समूहवाले (सूफ़ी) कहते हैं कि जो कुछ भी मजाज़ में है वह सब हक़ीक़त के नाम हैं। "उसी ईश्वर की शपथ जिसका कोई नाम नहीं। तू उसे जिस नाम से भी पुकारेगा वह प्रकट होगा।"

यदि हिंदवी वाक्यों में कहें "काँधे कमरिया" या "पाँयन पाँवरे" तो इससे फ़क़ीरी तथा ज़ुहद (वैराग्य) के वस्त्र की ओर संकेत होता है जो आरिफ़ (ज्ञानी) ही धारण करते हैं।

यदि हिंदवी रचनाओं में "मोर मुकुट सीस धरे" का उल्लेख हो तो इससे इस बात की ओर संकेत होता है कि मनुष्य ने अमानत[१९] का भार स्वीकार कर लिया है और उसकी व्याख्या इस आयत में है, "मनुष्य ने उस अमानत को उठा लिया।" कभी इससे खलीफ़ा बनाए जाने के मुकुट की ओर संकेत होता है "मैं भूमि पर अपना खलीफ़ा बनाना चाहता हूँ" इसका प्रमाण है। कभी नामों के ज्ञान की ओर संकेत होता है, "खुदा ने

मनुष्य को समस्त नामों की शिक्षा दी", यह आयत इसी विषय की ओर संकेत करती है। व्याख्या करनेवाले* का छंद।

छंद

नामों का ज्ञान शहंशाही ताज है। यह ताज आदम के शीश पर बड़ी सजावट से रखा गया है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **गोवर्द्धन धारी** कहें तो इससे लोगों का विचार है कि ईश्वर की अमानत (धरोहर) के भार की ओर संकेत होता है जो क़ाफ़[20] पर्वत से भी भारी है। मनुष्यों में इस भार के उठाने वाले हमारे रसूल सल्लम (मुहम्मद साहब) हैं, जैसा इमाम ख़ाक़ानी[21] ने कहा है।

"वह मनुष्य के शरीर में (ईश्वर की) धरोहर के योग्य, वह समाचारों के संसार (इस संसार) में रूहानियत (आध्यात्म) पर कार्य करने वाला है। इन वाक्यों से मुहम्मद साहब का जक़ात[22] का भार उठाना भी समझा जा सकता है जैसा इस आयत में हैं, "तुझे जो आदेश दिया गया उस पर दृढ़ रह"।

यदि हिंदवी वाक्यों में कहें "**श्याम सुंदरिया साँवरो**" तो इससे मनुष्य के अंधकार एवं अज्ञानता की ओर संकेत होता है। इसमें एक उत्तम बात यह है कि यह दोनों शब्द अतिशयोक्ति के हैं। यह नियम है कि जब कोई वस्तु अपनी सीमा से आगे बढ़ जाती है तो अपने विरुद्ध वस्तु के समान हो जाती है। इसी कारण इन शब्दों को प्रकाश तथा ज्ञान के समान बना दिया गया है।

छंद

अंधकार एवं अज्ञानता प्रकाश के विपरीत हैं किंतु ये ईश्वर के प्रमाण को प्रकट करते हैं जब दर्पण धुंधला होता है तो मनुष्य के मुखको अन्य का मुख दिखाता है।

कभी इन शब्दों से फ़क़ीरी के अंधकार की ओर संकेत होता है जो मनुष्य के लिये समस्त प्राणियों की अपेक्षा उसकी श्रेष्ठता एवं महत्ता के साधन हैं। "फ़क़ीरी मेरे लिये गर्व की बात है"—का संकेत इसी ओर है।

छंद

मनुष्यों तथा जिन्नों की योग्यता को प्राप्त कर लिया है और फ़क़ीरी की तलवार द्वारा बादशाही प्राप्त की है।

---

* मीर अब्दुल वाहिद के छंद

यदि हिंदवी वाक्यों में **"अंतरजामी (अन्तर्यामी)** का उल्लेख हो तो इससे इरफ़ान वालों (ज्ञानियों) के हृदय की ओर संकेत होता है जो प्रकाशमान हैं और वस्तुओं की आंतरिक बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तथा बुद्धि द्वारा समझ जाते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"पीत पिछौरी"** का उल्लेख हो तो इससे प्रेमियों के मुख के रंग की ओर संकेत होता है जो पीला होता है।

छंद

तेरे प्रेम की कीमिया से मेरा मुख सोना बन गया। हां, तेरी अनुकंपा के आशीर्वाद से धूल भी सोना बन जाती है।

और कभी कभी इन शब्दों से ईश्वर के ऐश्वर्य की चादर समझी जाती है। "आकाश तथा पाताल में ऐश्वर्य उसके लिये उचित है" एवं "और इन (आकाश तथा पाताल) में वही पूर्णरूपेण दृष्टिगत हो सकता है। ऐश्वर्य मित्र के मुख का आलोक है और उसका प्रदर्शन चादर बिना संभव नहीं।"

ऐश्वर्य ही ईश्वर के अस्तित्व के प्रकट होने का स्थान है। नूर (ज्योति) की चादर को देखो, वह स्वयं नूर (ज्योति) ही होती है।

अध्याय (३)

यह अध्याय उन वाक्यों के अर्थ के संकेत से संबंधित है जो कुछ अन्य स्थानों पर 'ध्रुवपद' एवं 'विशुनपद' (विष्णुपद) के अतिरिक्त प्रयोग में आते हैं।

यदि हिंदवी में **सयाला (?) व माँह व पाला'** अथवा उनसे संबंधित शब्दों का प्रयोग हो तो उनसे (इस विषय की ओर) संकेत होता है कि फ़क़ीरों के अहवाल (आध्यात्मिक दशायें) उनके अधिकार में होते हैं और उनसे तजल्लियात (जोतियां) प्रकट होती रहती हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'महाला'** व **कौंच** का उल्लेख हो तो इससे उन चिंहों की ओर संकेत होता है जो भूत काल एवं बीते हुए समय की स्मृति दिलाते हैं और कभी उन बलंदियों की ओर संकेत करते हैं जो इस समय अधिकार में हैं तथा वर्त्तमान हैं।

यदि हिंदवी रचना में कहें, **'सूर सप्त (सौर सपेती ?) ते जाड़ न जाय'** अथवा इसी प्रकार की अन्य चर्चा हो तो इनसे इस बात की ओर संकेत होता है कि जो उत्कृष्ट अहवाल (आध्यात्मिक दशायें) व्यतीत हो चुके हैं उनको प्रयत्न तथा किसी उपाय द्वारा पुनः प्राप्त करना सम्भव नहीं और किसी युक्ति अथवा छल द्वारा उन तक पहुँचना असंभव है अपितु उन दशाओं का प्राप्त करना केवल परमेश्वर की अनुकंपा पर निर्भर है।

छंद

सर्वप्रथम तुम समय को बहुमूल्य समझो। समय के मोती का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। सुअवसर यदि किसी के हाथ से निकल जाय तो फिर नहीं लौट सकता।

यदि हिंदवी रचनाओं में कहें **'जाड़ लगत मरत, कंठ लाग प्यारी'** तो इससे इस बात की ओर संकेत होता है कि जब प्रेम की शक्ति ठंडी हो जाती है तथा वियोग की दशा होती है तो वह प्रियतम का आलिंगन करने की आकांक्षा करता है। प्रियतम से आलिंगन होने का तात्पर्य यह है कि आशिक़ अपने व्यक्तित्व तथा गुणों को नष्ट करदे क्योंकि सच्चे आशिक़ के गुण तथा व्यक्तित्व उसको ठंडा बनाने तथा प्रियतम से परदे में रखने का कारण

होते हैं। अतः आलिंगन होने की आकांक्षा का यही अर्थ है कि अपने व्यक्तित्व तथा गुणों को नष्ट कर दे।

छंद

मधुशाला वाला (मस्त) बन जाना ही अपने न.फ्स (वासना) के अधिकार से छूटना एवं मुक्त होना है। ख़ुदी (अहंभाव) कुफ़्र. है। यदि तू पवित्र है (धर्मनिष्ठ) है तो इस बात को ध्यान में रख।

यदि हिंदवी वाक्यों में इस प्रकार की चर्चा हो

'पवन झनमका सीव जनाया। (?)
कामी कंत बहुरि किन लाया॥'

तो इनसे समय की उदासीनता तथा संसार के अत्याचारों की ओर संकेत होता है। क्योंकि सालिक (साधक) को अत्याचारियों के अत्याचारों तथा निर्दयी लोगों की निर्दयता के हाथों उनका सामना करना पड़ता है और सालिक (साधक) अल्लाह की रिज़ा (संतोष) से संतुष्ट होकर ईश्वर की शरण में आ जाता है और अपनेमें यह गुण उत्पन्न कर लेता है कि पूर्णतया अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर दे जिससे इन अत्याचारों तथा दुःखों से बचकर निकल जाय।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'पंचम व बसंत'** तथा उनसे संबंधित शब्दों का उल्लेख हो तो इससे अपने व्यवहार में अपने स्वभाव को संयमी बनाए रखने की ओर संकेत होता है। चरित्र में स्वभाव का संयम उस समय उत्पन्न होता है जब स्वभाव में सभी नैतिकतापूर्ण गुण मिश्रित हो जाएँ और बनावट तथा विरोध की आदत समाप्त हो जाय। अल्लाह ने कहा है 'तेरे रब की शपथ ये लोग उस समय तक ईमानवाले न होंगे जब तक अपने झगड़े की बातों में तुझको अपना हाकिम न स्वीकार कर लें, तो फिर जो तू निर्णय कर देगा उसमें अपने न.फ्सों (वासनाओं) के लिये कोई हानि न पाएँगे और उस निर्णय पर पूर्णतया संतुष्ट रहेंगे।' अर्थात् इनका ईमान (इस्लाम में विश्वास) उस समय पूर्ण होगा जब कि 'हे मुहम्मद ! ये लोग तुझे अपना शासक स्वीकार कर लेंगे और तू जो आदेश देगा उससे अपने हृदय में किसी असंतोष तथा भार का अनुभव न करेंगे और पूर्णतया तेरे आदेशों के समक्ष शीश नवा देंगे, और यह ध्यान रखो कि मनुष्य का स्वभाव, चरित्र में उस समय संयमी बनता है जब कि न.फ्स (चेतना) में

नफ़से मुतमइना (संतुष्ट चेतन) बनने के गुण पैदा हो जायं। इस दशा के लिये हिंदवी में **'बसंत'** शब्द का प्रयोग करते हैं। कभी **बसंत** तथा उसके समानार्थक शब्दों से प्रियतम के मुख के रंग की ओर संकेत करते हैं।

छंद

उस माधुर्य भाववाले प्रियतम ने जब मेरे मुख को स्वर्ण के समान पाया तो उसने कहा कि अब तू मुझसे संभोग की आशा न कर, क्योंकि देखने में तू मेरे विरुद्ध है। तू खिज़ां (हेमंत का रंग रखता है और मैं बहार (बसंत) का रंग रखता हूँ।

इस शब्द से कभी आदम एवं मनुष्यों के जन्म के समय की ओर भी संकेत करते हैं और कभी रसूल सल्लम (मुहम्मद साहब) के प्रकट होने के समय की ओर भी संकेत करते हैं।

छंद

हम गुलाम के समान हैं तथा संसार बहार (बसंत) के समान है। आज तू खिला हुआ है और कल भूमि पर गिरा पड़ा है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **फूल** वा **पुहुप** की चर्चा हो तो इन शब्दों से यह वास्तविक अर्थ पर्याप्त हैं कि 'उनसे रसूल का पसीना समझा जाय।'

छंद

हे फूल मैं तुझसे प्रसन्न हूँ कि तू किसी की सुगंध रखता है। हे सरो मैं तुझ से प्रसन्न हूँ कि तेरी आकृति अमुक प्रिया से मिलती जुलती है।

और कभी इन शब्दों से इस्लाम के गुणों की ओर संकेत होता है जो कि जन्म से ही प्रत्येक मनुष्य के साथ होते हैं। "प्रत्येक बालक का जन्म प्रकृति के अनुसार इस्लाम पर होता है।" कभी इससे मोमिनों (धर्मनिष्ठ मुसलमानों) के नूर (ज्योति) की ओर संकेत होता है जो रसूल सल्लम (मुहम्मद साहब) के नूर का प्रतिबिंब हैं। "मैं अल्लाह के नूर से उत्पन्न हुआ हूँ और मोमिन मेरे नूर से पैदा हुए हैं।"

और कभी इन शब्दों से विविध भांति की नेकियों (सदाचारों) तथा इबादतों (उपासनाओं) के नूर (ज्योति) की ओर संकेत होता है। इन इबादतों (उपासनाओं) के सुंदर मुख पर पाप एक तिल के समान होता है। कहा जाता है निःसंदेह ईश्वर तुझे इस कारण पाप में ग्रस्त रखता है कि

तुझपर इबलीस की बुरी दृष्टि का प्रभाव न हो जाय, क्योंकि जब तेरा कर्म तथा इबादत (उपासना) उत्कृष्ट होते हैं उस समय तेरे एक गधे का सिर पैदा कर दिया जाता है जिससे तुझको बुरी दृष्टि न लग जाय। (इस संबंध में व्याख्या करनेवाले का छंद इस प्रकार है—)

छंद

यदि तेरे कर्म का उद्यान हरा भरा है तो मारेफ़त (ज्ञान) के द्वारा सीने में बहार पैदा हो जाएगी। किंतु बुरी दृष्टि से रक्षा के लिये दो एक पाप उत्पन्न हो जाएँगे जो गधे के सिर के स्थान पर होंगे।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"हार व हमेल"** का उल्लेख हो तो उससे योग्यता के धागे में उत्कृष्ट चरित्र, कर्म एवं नेकियों के एकत्र होने की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"चौसर हार"** का उल्लेख हो तो इससे उन चार मक़ामों (लक्ष्यों) की ओर संकेत होता है। "शरीअत मेरे कथन हैं, तरीक़त मेरे कार्य हैं। हक़ीक़त मेरे अहवाल का नाम है तथा मारेफ़त मेरी पूंजी है।"

यदि हिंदवी वाक्यों में **'सेहरा'** शब्द की चर्चा हो तो उससे उस उत्कृष्ट मक़ाम (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है जो 'तहज्जुद' पढ़नेवालों तथा रात्रि में जागनेवालों को प्राप्त होता है। "और रात्रि में सुन्नती नमाज़ों के समान तहज्जुद पढ़ा कर कि ईश्वर तुझे उत्कृष्ट स्थान पर शीघ्र उन्नति देगा।"

यदि हिंदवी रचनाओं में यह दोहरा आये **"हौं बलिहारी साजनाँ साजन मुझ बलिहार"** तो इससे आशिके हक़ीक़ी एवं माशूक़े मजाज़ी की विशेषताओं की ओर संकेत होता है और ये विशेषतायें अभिलाषा एवं आवश्यकतायें हैं।

"हमें उसकी आवश्यकता थी और उसको हमारी अभिलाषा थी।"

"हौं साजन सिर सेहरा साजन मुझ गलहार" यहां सेहरा शब्द से अनिवार्य इबादतों (उपासनाओं) द्वारा ईश्वर की निकटता की ओर संकेत होता है और **'हार'** का अभिप्राय नवाफ़िल[२] द्वारा ईश्वर की निकटता है। इसे सावधानी से समझ लो।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'पुर'** का उल्लेख हो तो उससे आत्मबलिदान एवं दान की प्रकृति उत्पन्न करनेवाले की ओर संकेत होता है "और ये लोग अपने नफ़्स (वासना) का बलिदान करते हैं यद्यपि उन्हें स्वयं आवश्यकता है।"

छंद

दान की निहित विशेषता वृक्ष से सीखो, जो तुम्हें पत्थर मारे, तुम उसे फल प्रदान करो।

यदि हिंदवी वाक्यों में "**नौलासी**" का उल्लेख हो तो इससे उन बहुत सी दशाओं एवं ईश्वर की अनेक अनुकंपाओं की ओर संकेत किया जाता है जो अत्यधिक संख्या में प्राप्त होती रहती हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में "**कोकिला**" का उल्लेख हो तो इससे निष्ठावान् प्रेमियों की ज़बान की ओर संकेत होता है क्योंकि बुद्धिमत्ता के स्रोत हृदय से उनकी ज़बान द्वारा निकलते रहते हैं और हाल (मूर्च्छा) से विवश होने के समय यह आयत उनकी सहायक होती है। "अल्लाह ईमानवालों को पक्के तथा स्थायी वचन द्वारा दृढ़ एवं पुष्ट रखता है।"

यदि हिंदवी वाक्यों में "**भंवर, भौंरा**" अथवा इसी प्रकार के नामों का उल्लेख हो तो इससे मनुष्य के नफ़्स (वासना) के अंधकार की ओर संकेत होता है, कारण कि उसका पहचानना अल्लाह की मारेफ़त (ज्ञान) का साधन है। "जिसने अपने नफ़्स को पहचान लिया उसने अपने ईश्वर को पहचान लिया।"

यदि हिंदवी वाक्यों में "**मालती**" की चर्चा हो तो इसका अभिप्राय मानव संबंधी तत्वों के उन पुष्पों से होता है जो इस आयत के मोदप्रद सुगंधित पवन द्वारा सूरत (संसार) के उपवन में खिलते हैं कि "हमने उस आदम में अपनी रूह फूंकी।" (व्याख्या* करने वाले के छंद—)

छंद

सूरत (संसार) के उपवन में यदि यह पुष्प न खिलता तो उपवन का गुरु अपना रंग किस वस्तु में प्रकट करता ? "परमेश्वर ने मनुष्य को अपने रूप के अनुसार उत्पन्न किया।"

छंद

उस सबसे बड़े बादशाह ने दृढ़तापूर्वक द्वार बंद कर लिए थे। सहसा उसने आदम का वस्त्र धारण किया तथा द्वार पर आ गया।

वह गीत जो बिशुनपद (विष्णुपद) के इस राग में गाया गया है "बसंत सब मेदिनी फूलन छाइया" छंद के विषय की ओर संकेत करता है।

---

१ मीर अब्दुल वाहिद के छंद

छंद

कहते हैं कि संसार कांटे के समान है अथवा उद्यान के रूप में है। ईश्वर का ऐश्वर्य अत्यधिक है क्योंकि इस आयत द्वारा "मैं निःसन्देह तुम्हारे साथ हूँ", सभी संसार को उद्यान समझते हैं

"तरवर भेख फिर आया" द्वारा इस छंद की ओर संकेत होता है।

जब अवगुण परिवर्तित हो गए तो जितनी कठिनाइयां थीं सब बदल गईं।

जो गीत विपुन पद (विष्णुपद) के इस राग में गाया गया है **"मेरो चोला झटका कुंवर संग"** से इस बात की ओर संकेत होता है कि अधिकार तथा आधिपत्य के आवरण जो मेरे प्रत्यक्ष व्यक्तित्व से संबंधित हैं वे परम प्रियतम के सगीत के समय उठ गए और नीचे गिर गए।

छंद

इबादत में, खड़ा होना, बैठना, तकबीर[3] कहना तथा नीयत[४] करना माशूके हक़ीक़ी की संगति के समय नष्ट हो जाते हैं।

"हौं चाचर खेलों सरब अंग" से इस बात की ओर संकेत होता है कि अब ईश्वर का मारेफ़त (ज्ञान) का नृत्य, जिसे हिंदवी में **चाचर** कहते हैं मुझको इस अस्तित्व के संसार से प्राप्त हुआ है क्योंकि अधिकार तथा आधिपत्य का परदा एक अस्थायी वस्तु थी, उसके उठ जाने के उपरांत 'ऐनुलयक़ीन'[५] की आंख से दिखाई दे गया कि मेरे अस्तित्व के कणों में से कोई कण भी परम प्रियतम के हिलाए बिना नहीं हिलता अपितु उसी के अधिकार पर निर्भर एवं अवलम्बित है। "वह परम प्रियतम जिस प्रकार चाहता है उसको हिलाता है और उसीके द्वारा अस्तित्व के कण हिलते तथा नृत्य करते हैं। (व्याख्या करनेवाले के छंद*)

छंद

मेरे अस्तित्व के कणों का नृत्य उसीके कारण है और मेरे व्यक्तित्व के कणों का हिलना उसीके ओर से है।

यदि हिंदवी वाक्यों में इस प्रकार के लेख हों **"काची कलियां न तोर मुरझ गई डालियां"** तो इससे इस विषय की ओर संकेत होता है कि मारेफ़त (ज्ञान) के रहस्य की कोंपलें तथा इरफ़ान (ज्ञान) के भेदों की कलियां अभी तक कच्ची हैं। तथा अभी तक 'एनुलयक़ीन' के पुष्प की जड़ में आदि काल से चलनेवाली मधुर पवन द्वारा मारेफ़त (ज्ञान) तथा बुद्धि की भूमि

---

* मीर अब्दुल वाहिद के छंद

में खिल नहीं पाई हैं, इन कलियों तथा कोंपलों को मत उठाओ और खोल कर न रखो, जिससे उस फूल की जड़ की डालियां आपस में उलझ न जायें और उन्नति तथा बढ़ने से रुक न जायं ॥

"दोथन हाथ न लावा पावा गालियां" से इस ओर संकेत होता है कि दैवी रहस्य तथा ईश्वर की इच्छा के भेद जो बुद्धि तथा शरीअत के कारण निहित हैं, और यदि तुझको विलायत (संतलोक) के नूर (ज्योति) द्वारा उनका ज्ञान प्राप्त हो जाय तो तुझे उसमें हस्तक्षेप न करना चाहिए। अपने ज्ञान के अनुसार कार्य न कर, क्योंकि यदि तुझ पर ज़िनदीक़ एवं मुलहिद अथवा मुरतिद (अधर्मी) होने का आरोप लग जायगा तो तू हत्या के योग्य कर दिया जायगा।

छंद

कभी किसी सभा में सच्चे इश्क़ के रहस्य का उल्लेख मत कर। तू ने देखा है कि मनसूर हल्लाज ने एक संकेत बताया और वह सूली पर चढ़ा दिया गया।

यदि कोई मस्ती में उस इश्क़ का रहस्य कह जाए तो तरीक़त में उसका बदला सूली पर चढ़ना है।

यदि हिंदवी में इस प्रकार का लेख हो **"इंह बन फूली पुंडरिया उह बन तीस"** तो इससे उस बात की ओर संकेत होता है कि संसार में काम तथा वासना का उपवन और लोभ एवं लोलुपता के उद्यान खिले हुए हैं और वहां अथवा उक़बा (परलोक) के मैदान में स्वर्ग के वरदान तथा जन्नत के स्वाद के उद्यान बहार पर हैं, अतः यहां काम तथा वासना और वहां वरदान एवं स्वाद हैं। इनसे क्या प्राप्त हो सकता है। इनकी ओर आकर्षित होना आशिक़ों की प्रतिष्ठा के अनुसार उचित नहीं।

छंद

लोक तथा परलोक आशिक़ के लिये आवरण हैं उनकी ओर आकर्षित होना आशिकों के लिये उचित नहीं।

"ले चल रानी के डुलहा अपने देस" इससे इस विषय की ओर संकेत होता है कि आशिक़ों का उद्योग, आशिकों; मुरीदों, तथा मुर्शिदों से कहता है कि मुझे किसी अन्य संसार में डाल दो और इन सब से मुक्ति दिला दो और लोक तथा परलोक किसी की अभिलाषा मत करो।

छंद

हमारे लिये इस संसार से पृथक् एक अन्य संसार है और स्वर्ग नरक के अतिरिक्त एक अन्य स्थान भी है।

इस बात का इस पूर्वी गीत में भी उल्लेख है **"साजन आओ हमारी बारीं"**। यह संकेत अज़ली (अनादि काल से संबंधित) निमंत्रण की ओर है। अल्लाह शांति के घर की ओर बुलाता है। यह संकेत उसी लोक की ओर है जिसकी ओर हमने उपर्युक्त छंद में संकेत किया है। और इस हिंदवी पद में भी इसी संकेत का उल्लेख है।

"हम तन फूलि फूलन फुलवारीं" इससे भी उस लोक की ओर संकेत होता है जो ईश्वर ने चाहा तो उसके निकटवर्ती लोगों को प्राप्त होगा। स्वर्ग जिसमें न हूरें (अप्सरायें) हैं न भव्य भवन बने हैं न दूध है न मधु, उसमें हमारा रब हंसता हुआ दिखाई देगा।

छंद

अल्लाह निकटवर्तियों का उद्यान विचित्र उद्यान है। वहां प्रत्येक कली के लिये मुस्कान है अपितु "प्रत्येक कली में तू हंसता हुआ दिखाई देता है।

तुझे ज्ञात होना चाहिए कि तुझे ऐसे मनोहर लोक की ओर बुलाते हैं और कहते हैं **"तुझ कारन मैं सेज संवारी"**।

हे मित्र मैंने अपने संभोग के बिछौने को विशेष कर तेरे लिये ही सजाया है। प्रतिष्ठा पर अधिकार रखनेवाले अपनी प्रतिष्ठा को पहचान। मैंने मृत्युलोक को तेरे ही कारण पैदा किया है। 'तू मेरी ओर आ और मैं तेरी ओर आ रहा हूँ।' तुझे ज्ञात है कि मैंने तेरे लिये क्या तैयार किया है? ऐसी वस्तुएँ जिन्हें किसी आंख ने नहीं देखा तथा किसी कान में नहीं सुना और जिनका किसी हृदय में विचार भी नहीं आया। विशेषकर मैंने अपने व्यक्तित्व को तुझे दे दिया है। 'जिसे उसका स्वामी मिल गया उसे सब कुछ मिल गया' मैं तेरे आगमन के कारण पग पग पर न्यौछावर हूँ। तू पग धर कि हम तेरे लिये ही हैं।

छंद

हे मित्र आ जा कि हम तेरे लिये ही हैं। तू हम से अनैक्य भाव मत रख कारण कि हम तेरे मित्र हैं।

तन मन जोबन जिउ बलिहारी—देख कि किस प्रकार हम तुझ पर दया, कृपा तथा अनुकंपा प्रकट कर रहे हैं कि **'तन मन'** अर्थात् अंतरंग

एवं बहिरंग 'जोबन जिउ' अर्थात् सुंदरता एवं परिपूर्णता 'बलिहारी' विशेषकर तेरे लिये है। 'अल्लाह प्रशंसा के योग्य है; यह विचित्र रहस्य है।'

यदि हिंदवी रचना में आए—

नन्ह नन्ह पात जो अंबली सरहर पेड़ खजूर।
तिन चढ़ देखों बालमा नियरे बसैं कि दूर।'

तो **अंबली** तथा खजूर से **पवित्र** कलमे की ओर संकेत होता है। पवित्र कलमे का उदाहरण पवित्र वृक्ष के समान है। माशूक़ से निकटता व दूरी का पता लगाने के लिये वृक्ष पर चढ़ने से इस बात की ओर संकेत होता है कि उस सच्चे की चर्चा पाक कलमे प्रर विजयी हो जाती है। **अंबली** का तात्पर्य जाड़ तथा घटाव के उल्लेख से है। अर्थात् अल्लाह के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं है, जैसा कि माशूक़ का मार्ग देखने के लिए दृष्टि को **अंबली** के फूल की पंखड़ियों से बाहर निकाल देना चाहिए। जब उस परम प्रियतम की चर्चा इन दोनों उल्लेखों को विजय कर ले तो कभी प्रियतम को निकट देखेगा और कभी दूर औरकभी प्रत्यक्ष देखेगा और कभी न निकट और न दूर और कभी जितना निकट से देखेगा अधिक दूर पाएगा और जितनी ही दूर से देखेगा उतना ही निकट पाएगा क्योंकि जितनी बारीकी अधिक होगी घिराव अधिक होगा और कभी आरिफ़ (ज्ञानी) दूरी तथा निकटता के संबंध में संदेह अटक जाता है। मूसा (उन पर सलाम हो) ने प्रार्थना में कहा, 'हे ईश्वर क्या तू मुझसे निकट है या मैं तुझ में हूँ अथवा तू मुझसे दूर है जो मैं तुझको पुकारता हूँ।

और इस **सोहू** राग में यह गीत **'उठ सुहागिन मुख न जोह छैल खड़ो गल बाहिं।'** अर्थात् हे महान् आरिफ़ (ज्ञानी) उठ तथा जल्दी कर एवं प्रियतम के दर्शन की संपत्ति प्राप्त कर ले। उस प्रियतम ने अपनी समस्त चमक दमक तथा युवावस्था के साथ अनुकंपा की गली में पग रखा है और ध्यान दे रहा है तथा ध्यान की प्रतीक्षा कर रहा है।

"थाल भरी गजमोतिनहिं गोद भरी कलियाहिं" अर्थात् अनुकंपा के मोती प्रेम के थाल में भर कर तथा दान की कलियां प्रेम के पल्लू में डालकर तेरे निकट लाया है। (व्याख्या करने वाले के छंद—)

छंद

सज धज वाला माशूक़ सैकड़ों गुणों के साथ प्रकट हो रहा है। प्रातःकाल अपनी माशूक़ी की चादर से निकलकर तेरी खोज में आया है।

तेरे लिये अपने पल्लू में मोती रखता है तथा थाल में मोती भरे हैं। हे मित्र उठ तथा उसका माशूक़ाना मुख देख।

यदि हिंदवी रचना में इस प्रकार का उल्लेख हो **"मीत चिरातन परिहरी भूली कौन हुलास'** अथवा इसी प्रकार के शब्दों का प्रयोग हो तो उनसे इस विषय की ओर संकेत होता है—हे दास हमारी प्राचीन दया तथा अनुकंपा जो आदि काल से तुझे प्राप्त हैं, उनके प्रति कृतज्ञता के उत्तरदायित्व से भी (तूने) मुख फेर लिया है और तू किस वस्तु से प्रसन्न हो गया है। हे मनुष्य तुझको अपने ऊपर दया करनेवाले परमेश्वर के संबंध में किस वस्तु ने भ्रम में डाल दिया है ?" मनुष्य तूने हमारी आदि काल से होनेवाली अनुकंपाओं को तथा हमारी अनंत युग तक होने वाली अंतिम दयाओं की भी सुधि न रखी और नफ्स के छल तथा इबलीस की धूर्तता से प्रसन्न हो गया। यह क्या जीवन है और यह कैसा रहन सहन है।

छंद

हे मनुष्य तू प्रत्येक क्षण नित्य नये छल करता है और तेरे प्रत्येक बाल की जड़ में एक इबलीस वर्त्तमान है।

तेरी ऐसी दशा है जो सृष्टि में बहुत कम पाई जाती है। यह हास का स्थान नहीं अपितु करुणा का स्थान है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **"अष्टुनहार वनस्पति"** (?) का उल्लेख हो तो इसका तात्पर्य १८००० जगत् से होता है और कभी कभी ७२ संप्रदायों[१] तथा इसी प्रकार की वस्तुओं की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवीमें **बरखा (वर्षा)** ऋतु का उल्लेख हो तो यह उस प्रेम तथा मारेफ़त (ज्ञान) की ओर संकेत है जिसका उल्लेख इस हदीस में है "मैंने मित्र बनाया इस कारण कि मैं पहचाना जाऊँ।"

यदि हिंदवी वाक्यों में **बदरी** एवं इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो उससे उन बादलों की ओर संकेत होता है जिनके संबंध में हदीस में आया है "एक अरब ने रसूल अलेहिस्सलाम (मुहम्मद साहब) से प्रश्न किया कि 'जब सृष्टि की रचना नहीं हुई थी, उस समय हमारा रब (ईश्वर कहां था ? रसूल ने उत्तर दिया कि 'वह एक हलके बादल में था जिसके ऊपर तथा नीचे वायु नहीं थी।" और शब्द कोष में "ग़माम" का अर्थ हलका बादल है। और कभी उन तथ्यों की ओर संकेत होता है जिन्हें दूसरी श्रेणी का सत्य कहा जाता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **मेंह** अथवा उसके समानार्थक शब्दों का उल्लेख हो तो उससे नूर (ज्योति) की वर्षा की ओर संकेत होता है। हदीस में आया है, "अल्लाह ने मख़्लूक़ (जीव) को अंधेरे में उत्पन्न किया और फिर उन पर अपने नूर (ज्योति) का एक भाग बरसाया। जिस तक वह नूर (ज्योति) पहुँच गया वह सन्मार्ग पर आ गया और जो चूक गया वह मार्ग भ्रष्ट तथा विद्रोही हो गया।"

मआफ़ में लिखा है, "प्रकट होने के प्रातःकाल ने श्वास ली। सदाचार की पवन चली। दया की नदी में लहरें उठीं और अनुकंपा की वर्षा ने योग्य भूमि पर मेंह बरसाया कि "फिर उसने अपने नूर (ज्योति) की वर्षा की।" भूमि अपने रब के नूर से चमक उठी; और संसार को अमृत पान कराया। कभी इन शब्दों से आलमे अरवाह (आत्मालोक) की ओर संकेत होता है क्योंकि जल तथा आत्मा दोनों ही जीवन का कारण हैं और एक दूसरे से संबंध रखते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'स्वांति नखत'** (**स्वाती नक्षत्र**) **अथवा 'बूंद सेवाती'** अथवा इसी के समानार्थक शब्दों का उल्लेख हो तो इससे नामों के ज्ञान की ओर संकेत होता है जिनकी वर्षा इस आयत के शिक्षा के बादल से होती है। "आदम को अल्लाह ने नामों की शिक्षा दी" और उनके कारण हृदय की सीपियों में बहुमूल्य मोती पैदा कर दिए।

छंद

(तेरा) अस्तित्व नदी के समान है। तेरा शरीर तट के समान है। इस नदी से उठनेवाली मुक्ति तथा वर्षा की अनुकंपा नामों का ज्ञान है। बुद्धि इस अथाह समुद्र में डुबकी लगाती है, जिसकी गुदड़ी सहस्रों रत्न हैं, प्रत्येक लहर में हज़ारों बादशाहों के योग्य मोती, 'नक़ल[७],' 'नस[८]' तथा हदीस द्वारा गिरते हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'झकोर'** अथवा **'लकवाह'** अथवा इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इनसे ईश्वर की अनुकंपा तथा परमेश्वर की दया की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'बड़ी बड़ी बूंदन'** की चर्चा हो तो उनसे भूतकाल के सदाचारियों की आत्मा की ओर संकेत होता है।

द

जिससे इस लौकिक संसार में एक नदी उत्पन्न हो जाय विश्वास कर लो कि उस प्रत्येक बूंद का नाम जुनैद वा बायज़ीद होगा। और कभी फ़रिश्तों के प्रकट होने की ओर संकेत होता, "फ़रिश्ते तथा मलायेक उतरते रहते हैं" द्वारा इसी अर्थ की व्याख्या होती है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'फुंइहैं'** अथवा **'नन्हीं नन्हीं बूंदें'** का प्रयोग हो तो इससे सृष्टि के कणों में अल्लाह की ज़ात (अस्तित्व) के नूर (ज्योति) के प्रकट होने की ओर संकेत होता है।

छंद

संसार को तुम पूर्णतया एक दर्पण समझो। प्रत्येक कण में १०० चमकने वाले सूर्य हैं। यदि तू किसी बूंद का भी हृदय चीर कर देखे तो उससे १०० शुद्ध जल के समुद्र निकल आएंगे।

यदि तू सीधी तरह देखे तो मिट्टी के ढेर में सहस्रों आदम वर्त्तमान हैं। हाथ पैर के अनुसार एक मच्छर भी हाथी के समान है और नामों के संसार में बूंद भी नील नदी के समान है।

प्रत्येक दानेके हृदय में सौ खलिहान वर्त्तमान हैं और एक चावल के दाने में १०० संसार विद्यमान हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'पपीहा'**, **'दादुर'**, अथवा **'मोर'** तथा इसी प्रकार के शब्दों का उल्लेख हो तो इससे प्रेम के मतवालों की ज़बानों तथा आवाज़ों की ओर संकेत होता है और यही आवाज़ें प्रेम की भावनाओं तथा प्रीति की अभिलाषाओं को उत्तेजित करती हैं और इन्हीं के द्वारा भौतिक संसार से पृथक् होने तथा एकांत एवं ईश्वर से प्रेम और विक्षिप्तता की प्रेरणा प्राप्त होती है।

छंद

मैं उन शब्दों का दास हूँ जो अग्नि भड़का देते हैं न कि ऐसे वाक्य जो धधकती अग्नि पर भी शीतल जल डाल दें।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'दामिनी'** का उल्लेख हो तो इससे समय की तलवार की तेज़ी की ओर संकेत होता है और कभी उन बिजलियों तथा प्रकाश की चमक की ओर संकेत होता है जो एकांतवासियों के ईश्वर की ओर ध्यान लगाने के समय प्रकट होती हैं।

छंद

उसने यह कहा कि हमारी दशा संसार की दामिनी के समान है। क्षण भर में प्रकट हूँ तथा दूसरे क्षण में लुप्त।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'हंस', 'वक', 'चकई'** व **'सारस'**, अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्दों की चर्चा हो तो उनसे आलमे मिशाल (रूप लोक संसार) की ओर संकेत होता है और यह आलमे अरवाह (आत्म लोक) तथा आलमे अजसाम (शरीर लोक) के मध्य में संबध स्थापित करता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'घन गरजे'** अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्दों का प्रयोग हो तो उनसे ग़ैब (परोक्ष) से आने वाली हार्दिक दशाओं की ओर संकेत होता है जो आलमे अरवाह (आत्म लोक) से बड़ी तीव्रता के साथ प्राप्त होती है। अथवा ईश्वर की अनुकंपा की भावना की ओर संकेत होता है जो अत्यधिक बल प्राप्त करके बंदे (दास) को असावधानी की निद्रा से शनैः शनैः जगा देती है।

छंद

बंदों (दासों) पर अनुकंपा करनेवाले, तेरी अनुकंपा का एक कण सहस्त्र वर्ष की तसबीह (अल्लाह के नाम का सुमिरन) तथा नमाज़ से बढ़कर है।

और इन शब्दों से गैबी (परोक्ष की) आवाज़ देने वाले फ़रिश्ते की ओर संकेत होता है जो सुखद समाचार पहुँचाता है तथा सावधान करने के लिये आवाज़ देता है।

छंद

गत रात्रि में, मैं मदिरालाप में मस्त तथा मादक दशा में था। इसी अवस्था में ग़ैब (परोक्ष) के फ़रिश्ते ने ऐसे उत्कृष्ट तथा प्रसन्न करनेवाले समाचार सुनाए कि उनका उल्लेख संभव नहीं।

यदि हिंदवी वाक्यों में इस बात का उल्लेख हो **'धर ने पहना हरिया चोला'** तो इससे इस बात की ओर संकेत होता है कि सालिक (साधक, सूफ़ी) के न.फ्स (वासना) ने आत्मा के गुण प्राप्त कर लिए हैं। 'और भूमि अल्लाह के नूर (ज्योति) से चमक उठेगी।' और कभी इसी ओर संकेत होता है कि जिज्ञासुओं की दृष्टि में भूमि की प्रत्येक बनस्पति का प्रत्येक

पत्ता इस बात का साक्षी होता है कि 'हमने भूमि को बिछाया है तथा हम बड़े अच्छे बिछाने वाले हैं।'

छंद

जो घास भी भूमि पर उगती है वह कहती है 'अल्लाह एक है तथा उसका कोई साथी नहीं।

यदि हिंदवी में **'बीर बहूटी'** का उल्लेख हो तो उससे आत्माओं के शरीर ग्रहण करने की ओर संकेत होता है।

यदि हिंदवी रचनाओं में **'ऊंच खाल फिर नीर हिलोरा'** का उल्लेख हो तो इससे इस छंद की ओर संकेत होता है।

छंद

यद्यपि मदिरा तथा प्रेम के खेल हानि तथा परिपूर्णता के कारण हैं किंतु हमा अस्त (सब कुछ ईश्वर है) के मुक़ाम (लक्ष्य) पर हानि तथा परिपूर्णता सभी समान हैं।

छंद

जहां परमेश्वर के ऐश्वर्य के प्रकट होने का प्रश्न आता है वहां मेरी तौहीद (एकेश्वरवाद) तथा तेरा शिर्क (दूसरों को साथी बनाना) सभी समान हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'अंध कूप निस'** जैसे शब्दों का प्रयोग हो तो इन शब्दों से भौतिक उत्पत्ति, चित्त, स्वेच्छा, उच्च श्रेणी की अभिलाषा, अभिमान तथा अहंकार की ओर संकेत किया जाता है और यह सब वस्तुएं अंधे कूप के समान हैं।

'तनिक उस अंधे कूप से निकल जिससे तू संसार के दर्शन कर सके।'

यदि हिंदवी वाक्यों में **'पैंघ व हिंडोला'** का उल्लेख हो तो इससे रंगा रंगी (विभिन्न रूप) के मुक़ामात (लक्ष्य) तथा श्रेणियां की ओर संकेत होता है। और यह रंगा रंगी (विभिन्न रूपों) का होना ईश्वर की मारेफ़त (ज्ञान) के उतार चढ़ाव में से एक मुक़ाम (लक्ष्य) है चाहे यह सैर इलल्लाह (अल्लाह की ओर से भ्रमण) हो और चाहे सैर फ़िल्लाह (अल्लाह में भ्रमण) हो। अल्लाह बदलनेवाले हालों का मित्र है।

और जैतश्री राग में यह गीत **"एक हिंडोला बाप दिया"** का अभिप्राय यह है कि मारेफ़त (ज्ञान) को रंगा रंगी का पहला मक़ाम (लक्ष्य) भय तथा आशा का मक़ाम है तथा पिता का दिया हुआ मक़ाम है अर्थात् आदम से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है। **"दुजा जो पिया दई (दिया)"** अर्थात् रंगा रंगी का दूसरा मक़ाम (लक्ष्य) जो अपने ऊपर अधिकार प्राप्त करना तथा पाबन्दी का नाम है, कदाचित् हमें रसूलल्लाह (मुहम्मद साहब) के अनुसरण के आर्शीर्वाद से प्राप्त हो जाय।

"तिसरे हिंडोले न पांव धरौं" अर्थात् रंगा रंगी का तीसरा मक़ाम (लक्ष्य) भय एवं प्रेम का मक़ाम (लक्ष्य) है और वहीं से मैं मारेफ़त (ज्ञान) में दृढ़ हो जाऊँगा।

"जोबन लहरें लें" अर्थात् मेरे हृदय का विस्तार एवं अंतरङ्ग की परिपूर्णता वहदत (एकेश्वरवाद) की नदी में लहरें लेने लगेगी और (मैं) मारेफ़त (ज्ञान) के समुद्र में प्रचंड बन जाऊँगा एवं मानी (वास्तविकता) के समुद्र में वेग में आ जाऊँगा।

छंद

यह तूफ़ान जो मैं तनदूर में से निकलता देख रहा हूँ, यदि एक बार वेग में आ जाय तो न यहां मूसा रहेंगे और न तूर पर्वत।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'दुइ खांभ'** का प्रयोग हो तो उससे ईश्वर की अंगुलियों में से उन दो अंगुलियों की ओर संकेत होता है जो मोमिनों के हृदय को रंगा रंगी (विभिन्न रूपों) के मक़ाम (लक्ष्य) में परिवर्तित कर दिया करती हैं।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'चार डांडे** का उल्लेख हो तो उनसे चारों तत्वों की ओर संकेत होता है जिनके द्वारा रूप स्थापित रहता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **कँवल (कमल)** तथा **भौंरा** का उल्लेख हो तो उससे ईश्वर की स्थायी तथा अमिट बुद्धि की ओर संकेत होता है जो मनुष्यों के भाग्य का लिखा है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'तितरी'** का उल्लेख हो तो इससे उस मक़ाम (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है जहाँ मारेफ़त (ज्ञान) वाले अपने नफ़्स (वासना) को रयाज़त (तपस्या) देते हैं। यह मक़ाम (लक्ष्य) प्रत्येक व्यक्ति के लिये उसकी योग्यता के अनुसार होता है। बुजुर्गों में से एक

बुजुर्ग से लोगों ने प्रश्न किया, 'आप अपने नफ़्स (वासना) को रयाज़त में किस मक़ाम (लक्ष्य) पर व्यवस्त पाते हैं' तो उन्होंने उत्तर दिया। 'तवक्कुल (प्रसाद) के मक़ाम पर'। कभी उस मक़ाम (लक्ष्य) की ओर संकेत होता है जिसको सच्चाई का विश्राम स्थल कहते हैं।

यदि हिंदवी में **'त्यौहार'** अर्थात् **'दिवाली होली'** आदि का उल्लेख हो तो इन शब्दों से मंगल कामनाओं तथा मनोहर स्थानों की ओर संकेत होता है। यह मक़ाम (लक्ष्य) माशूक़ की अनुकंपा तथा आशिक़ के समक्ष माशूक़ (प्रियतम) की कृपा तथा दया के सुखद समाचारों से स्पष्ट होता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **'प्रियतम लग तन होली कीन्हा'** अथवा इसी प्रकार के वाक्यों का प्रयोग हो तो इससे प्रेम की उस अग्नि की ओर संकेत किया जाता है जो आशिकों के हृदय को सजाए हुए है और इस अग्नि ने उनके अस्तित्व को सिर से पैर तक घेर रखा है। कश्फ़ुल इसरार में लिखा है कि "जो अग्नि हृदय में होती है वह बड़ी ही विचित्र अग्नि है"। हुसैन मनसूर (अल्लाह उनकी आत्मा को पवित्र करे) ने कहा है "अल्लाह की वह भड़कने वाली अग्नि जो हृदय में जलती रहती है, यह अग्नि मेरे हृदय में १००० वर्ष तक धधकती रही और वह सब का सब जल गया। अब चाहिए कि यह जला हुआ हृदय मेरी जलन की सूचना दे।"

छंद

हे दीपक आ, जिससे मैं और तू रहस्य की वार्त्ता करें क्योंकि जले हुए हृदय की दशा जले हुए हृदयवाला ही जानता है।

यदि हिंदवी वाक्यों में **धुरहंडी** (धुलेंडी) अथवा इसी प्रकार के शब्दों की चर्चा हो तो इससे आशिक़ के न्यौछावर होने की ओर संकेत होता है तथा प्रेम एवं प्रीति की अग्नि में जल कर भस्म हो जाने की ओर संकेत होता है।

छंद

तू मिट्टी बन जा, मिट्टी, जिससे (मिट्टी से) फूल उगें। इस कारण प्रत्येक वस्तु के प्रकट होने का **स्थान मिट्टी के अतिरिक्त** कुछ नहीं।

× × × ×

ईश्वर प्राणियों में से सर्वश्रेष्ठ प्राणी, हज़रत मुहम्मद तथा उनकी समस्त संतान पर अनुकंपा रखे। यह पुस्तक ९७४ हिं० (१५६६–६७ ई०) के

जमादीउल अव्वल मास में लिखी गई। हे उद्योगी अब यह कदापि न समझ लेना कि जिन शब्दों का उल्लेख हुआ वे उन्हीं अर्थों तथा संकेतों तक सीमित हैं अपितु इन शब्दों के अनेक अर्थ तथा संकेत हैं, जिनका उल्लेख नहीं हुआ है जिससे यह पुस्तक बहुत न बढ़ जाय और कुछ यह भी बात है कि उन अर्थों का उल्लेख संभव भी न था। बहुत से अर्थ बड़े ही कोमल तथा गूढ़ हैं जो कदाचित् श्रोताओं की बुद्धि के सारस्य के अनुकूल नहीं हैं और लोग उन्हें सुनकर अस्वीकार करने तथा विद्रोह करने लगेंगे अतः प्राचीन लोगों का अनुसरण करते हुए उन्हें छोड़ दिया जैसा कि अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास[१] ने कहा है कि "यदि मैं इस आयत के अर्थ का, तथा जो मैं जानता हूँ, तुमसे वर्णन करूँ तो तुम मुझे पत्थरों से मार डालोगे। आयत यह है "अल्लाह वह है जिसने सात आकाश उत्पन्न किए तथा उन्हीं के बराबर भूमि पैदा की। अल्लाह के आदेश उन्हीं से आते रहते हैं।"

छंद

अवस्था व्यतीत हुई और मेरे दुःख की कथा का अंत न हुआ। रात्रि समाप्त हुई, अब मैं कहानी संक्षिप्त करता हूं।

× × ×

भगवान्* को धन्य है कि पवित्र• पुस्तक "हक़ायके. हिंदी" जो मेरे जद (पितामह) मीर सैयिद अबदुल वाहिद शाहिदी बिलग्रामी की रचना है, शाबान ११६६ हि० (मई १७५६ ई०) को समाप्त हुई। दो चार पृष्ठ तथा इतने ही अंत के पृष्ठ और कुछ स्थानों पर बीच में फक़ीर ज़ादा सैयिद मुहंमद इमाम उर्फ़ शाह गदा के पवित्र हाथों द्वारा लिपि बद्ध हुए तथा शेख़ सेफ़ुल्लाह फ़क़ीर सरकार के हाथ से लिखे गए। वह अल्लाह ही आदि तथा अनंत है। उसे जिसने समझ लिया।

---

* ये वाक्य पुस्तक की नक़ल करनेवालों के है।

पारिभाषिक शब्द की व्याख्या

अध्याय १

१. हदीस—मुहम्मद साहब के कथन तथा उनके जीवन से संबंधित विभिन्न घटनाओं का संग्रह।

२. मसनवी—वह कविता जिसमें किसी कथा अथवा नसीहत का उल्लेख हो।

३. ग़ैब—इस्लामी सिद्धांत के अनुसार सभी बातों का स्रोत ईश्वर है और जो कुछ प्रकट होता है, उसे ग़ैब से प्रकट होना कहते हैं।

४. तसव्वुफ़ में इश्क़ को ईश्वर की इच्छा बताया जाता है। सूफ़ी इश्क़ तथा लिप्सा में बड़ा अंतर बताते हैं। इश्क़ में एक प्रियतम के अतिरिक्त किसी अन्य से संबंध रखना लिप्सा कहा जाता है। इश्क़ अहं भाव का सर्वनाश कर देता है। नाना प्रकार के कष्टों को झेलता हुआ आशिक़ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है। अरबी फ़ारसी तथा उर्दू ग़ज़ल एवं तसव्वुफ़ का आधार इश्क़ है। प्रायः इश्क़ किसी तरुण अथवा रमणी या किसी अन्य वस्तु से प्रारंभ होता है। उसे इश्क़े मजाज़ी (केवल प्रेम) कहते हैं। यही इश्क़े हक़ीक़ी (परम प्रेम) की सीढ़ी है। दारा शिकोह (शाहजहाँ के पुत्र, १०६९ ई०) ने लिखा है "चिदाकाश से सर्व प्रथम जो वस्तु निकली वह 'इश्क़' था और इसे भारतीय अद्वैतवाद में माया कहते हैं। इश्क़ ही से जीवात्मा "रूहे आज़म" का जन्म हुआ (मजमउल बहरैन, पृ० ५)।

५. अम्र—आदेश; किंतु सूफ़ी साहित्य में मनुष्य की आत्मा को ईश्वर का अम्र कहा जाता है। इमाम ग़ज़ाली (मृत्यु ११११ ई०) का कथन है कि लोक दो प्रकार के होते हैं। खल्क़ तथा अम्र और दोनों का संबंध ईश्वर से है। भौतिक पदार्थ का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं। इसका संबंध खल्क़ से है। जिन वस्तुओं को वास्तविक अस्तित्व प्राप्त है उनका संबंध मनुष्य की आत्मा से है और वे 'अम्रलोक' से संबंधित हैं।

६. कहा जाता है कि ईश्वर के नाम के ज्ञान का रहस्य केवल मुहम्मद साहब को ज्ञात था।

७. वे वस्तुएं जिनसे बाजे बनते हैं।

८. वह स्थान जहां मूसा पैग़ंबर ने ईश्वर से वार्त्ता की थी। कहा जाता है कि वार्त्ता एक वृक्ष द्वारा हुई थी।

६. मुसलमानों के अनुसार एक बहुत बड़े पैग़ंबर। उनका कार्य क्षेत्र मिस्र बताया गया है जहाँ का बादशाह फ़िरऔन जो अपने आप को ईश्वर कहता था, इनका बड़ा विरोधी था। उसे कंस का अनुरूप कहा जा सकता है। क़ुरान के अनुसार अपने अनुयायियों के कहने पर उन्होंने ईश्वर से वार्त्तालाप भी किया था। इस कारण इन्हें "कलीमुल्लाह" अर्थात् अल्लाह से बातें करनेवाला कहा जाता है।

१०. इस स्थान पर संगीत की विशेषता मूसा से तुलना करके बताई गई है कि मूसा तो केवल एक खास पेड़ ही से अल्लाह की आवाज़ सुन सकते थे किंतु सूफ़ी प्रत्येक बाजे से अल्लाह की आवाज़ सुनता है।

११. जिब्रील—एक फ़रिश्ता जो मुहम्मद साहब के पास ईश्वर का संदेश (वही) ले जाता था।

१२. कहा जाता है कि जब मेराज में मुहम्मद साहब को जिब्रील अपने साथ ईश्वर से भेंट कराने ले गए तो एक स्थान पर पहुँच कर रुक गए और मुहम्मद साहब को आगे जाने के लिये कहते हुए निवेदन किया कि 'यदि मैं बाल बराबर भी अब आगे बढ़ूँगा तो मेरे पर जल जायंगे।'

१३. अर्शे आज़म—परमेश्वर का सिंहासन जिसकी परिभाषा शरा में नहीं की गई है। मनुष्य के अंतःकरण को अर्श कहा जाता है। दारा शिकोह ने लिखा है कि "मन आकाश 'अर्श' कहा जाता है।" (मजमउल बहरैन पृ० १०४)

१४. कशफ़—प्रकट करना, खोलना, तसव्वुफ़ में दैवी प्रेरणा द्वारा विभिन्न रहस्यों का ज्ञान।

१५. इलहाम—जिब्रील द्वारा मुहम्मद साहब को प्राप्त होनेवाला संदेश।

१६. करामात—सूफ़ियों (संतों) द्वारा प्रदर्शित चमत्कार। सूफियों को अपने चमत्कारों को गुप्त रखने का आदेश दिया गया है।

१७. मजज़ूब—वह सूफ़ी (साधक) जो भावावेश में सब कुछ त्याग चुका हो और जिसे किसी बात को चिंता न हो। इन्हें किसी शेख (गुरु) की आवश्यकता नहीं होती। इसके विपरीत सालिक को शेख की आवश्यकता

होती है क्योंकि वह जिस प्रकार उचित समझता है धीरे धीरे सालिक (सूफ़ी) को मारेफ़त तक ले जाता है ।

१८. पीरे तरीक़त—तरीक़त (तसव्वुफ के मार्ग) का गुरु ।

१९. पीरे हक़ीक़त (अथवा मुर्शिदे हक़ीक़त)—हक़ीक़त के मार्ग का गुरु ।

२०. आयत—कुरान का एक पूरा वाक्य आयत कहलाता है ।

२१. जमीले हक़ीक़ी—वास्तविक सौंदर्य रखनेवाला (परमेश्वर)

२२. मक़ाम—तरीक़त (तसव्वुफ़ के मार्ग) के लक्ष्य; (देखो प्रस्तावना) ।

२३. हालात—तरीक़त में अंतःकरण की दशाएँ; (देखो प्रस्तावना) ।

२४. सिराते मुस्तक़ीम—इसका उल्लेख कुरान में लगभग ३१ स्थानों पर हुआ है । इसका तात्पर्य 'इस्लाम' भी समझा जाता है ।

२५. ज़ुलेखा—फ़िसलने का स्थान । यूसुफ़ की आसक्ता ।

२६. हक़ीक़ते मुहम्मदी—मुहम्मद की हक़ीक़त (वास्तविकता) । कुरान के अनुसार मुहम्मद साहब ईश्वर के अंतिम दूत हैं, किंतु तसव्वुफ़ में मुहम्मद साहब की सत्ता को सृष्टि की रचना का एक कारण बताया गया है और इस हक़ीक़त को बड़ी रहस्यमयी व्याख्या की गई है ।

२७. यूसुफ़—एक पैग़म्बर; ज़ुलैख़ा को इनसे बड़ा प्रेम था । ये बड़े रूपवान थे ।

२८. क़ाब क़ौसेन—दो कमानों के बराबर । कहा जाता है कि जब मुहम्मद साहब मेराज में ईश्वर का साक्षात्कार करने गए थे तो दोनों में दो कमान की दूरी रह गई थी ।

२९. जेहादे अकबर—जेहाद का अर्थ प्रयत्न अथवा निरोध । इस्लाम फैलाने के लिये जो युद्ध किए जाते हैं वे भी जेहाद कहलाते हैं । सूफ़ियों के अनुसार जेहाद दो प्रकार का होता है ।

(१) जेहाद अकबर (सर्वोच्च जेहाद) अपनी वासनाओं के विरुद्ध युद्ध

(२) जेहाद असग़र (निम्न जेहाद) क़ाफ़िरों के विरुद्ध ।

३०. हराम—वे कार्य तथा वस्तुएँ जिनकी शरा द्वारा मनाही की गई है ।

३१. ज़िक्र—ईश्वर के नाम का सुमिरन । इसके विभिन्न नियम हैं और सूफ़ियों की उपासना का ताना बाना इसी पर निर्भर है ।

३२. मजाज़—जो वास्तविक न हो । संसार तथा उसका प्रेम मजाज़ी कहलाता है ।

३३. वही—ईश्वर का संदेश जो मुहम्मद साहब के पास जिब्रील द्वारा आता था। कुरान के अनुसार मुहम्मद साहब किसी समस्या का उस समय तक उत्तर न देते थे, जब तक वही द्वारा उन्हें ईश्वर की इच्छा ज्ञात न हो जाती थी।

३४. अब्दाल—सूफ़ियों के अनुसार ब्रह्मांड का अस्तित्व कुछ बहुत बड़े बड़े सूफ़ियों पर निर्भर है। इनके विषय में किसी को कुछ ज्ञान नहीं। इन अधिकारियों में ३०० 'अख़यार' ४० 'अब्दाल', ७ 'अबरार', ४ 'अवताद', तीन 'नुक़बा' तथा एक 'कुतुब' अथवा 'ग़ौस' होता है। इन लोगों को एक दूसरे के विषय में ज्ञान होता है और एक दूसरे के परामर्श से कार्य करते हैं।

३५. फ़तवा—इस्लामी राज्यों में क़ाज़ी (न्यायाधीश) की सहायता के लिये मुफ़्ती होते थे। वे क़ाज़ी को शरा के आदेशों के विषय में सूचना देते थे। इनका मत फ़तवा कहलाता था। आज कल भी जो लोग शरा की समस्याओं के विषय में अपना मत देते हैं, उनका मत फ़तवा कहलाता है।

३६. बर्ज़ख़ेकुबरा—दो एक दूसरे के विरोधी वस्तुओं के मध्य की चीज़। मनुष्यों को मृत्यु तथा क़यामत के मध्य का समय बर्ज़ख़ कहलाता है।

३७. साद—अरबी का एक अक्षर। इसे स्वीकृति का चिह्न भी कहा जाता है।

३८. मीम—अरबी का एक अक्षर।

३९. अहमद बिला मीम—अहद अर्थात् एक (ईश्वर)। इस का अर्थ यह हुआ कि अहमद (मुहम्मद साहब) से अहद (अल्लाह) तक केवल मीम का अंतर है।

४०. तोबा—किसी बुरे कार्य को न करने की प्रतिज्ञा।

४१. इसते ग़फ़ार—मग़फ़ेरत (मुक्ति) की प्रार्थना करना।

४२. जुहद—वैराग्य। तरीक़त में कुछ सूफ़ियों के अनुसार पहला लक्ष्य तोबा, दूसरा इनाबत (परिवर्त्तन) और तीसरा जुहद (वैराग्य) होता है।

४३. तवक्कुल—ईश्वर को समर्पण। तरीक़त में कुछ सूफ़ियों के अनुसार यह लक्ष्य जुहद के पश्चात् आता है।

४४. तसलीम—परित्याग।

४५. तक़वा—पवित्रता, ईश्वर का भय।

४६. रिज़ा—संतोष, ईश्वर की इच्छा तथा जो भी उसके द्वारा हो उससे संतुष्ट रहना।

४७. ईश्वर के दूत—पैगंबर।

४८. वली—ईश्वर के मित्र, बड़े बड़े सूफ़ी (संत)।

४६. ज़ौक़—ईश्वर के प्रेम में स्वाद।

५०. रिसाल-ए-मक्खिया—फ़ुतूहाने मक्किया; लेखक, मुहीउद्दीन इब्रो अरबी।

५१. रिसाल—कुछ ऐसे सूफ़ी जो अपने आपको सत्य (ईश्वर) कहते थे, मनसूर आदि।

५२. आलमे नासूत—कुछ सूफ़ियों के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को चार आलमों (लोक) से गुज़रना होता है। (१) नासूत (२) मलकूत (३) जबरूत तथा (४) लाहूत। दारा शिकोह ने मजमउल बहरैन में लिखा है कि भारतीय संतों के अनुसार यह अवस्थाएं हैं। (१) जागरित (जाग्रत्) (२) स्वप्न (३) सखुपत (सुषुप्ति) और (४) तुर्या (तुरीय)। जागरित अथवा नासूत प्रकाशन एवं जागरण की अवस्था। स्वप्न अथवा मलकूत आत्माओं एवं स्वप्नों की अवस्था। सुषुप्ति अथवा जबरूत सर्वश्रेष्ठ अवस्था है और इसमें दोनों लोकों के चिह्न समाप्त हो जाते हैं और 'मैं' तथा 'तू' का अंतर नहीं रहता। चाहे कोई आंखें खोल कर देखे अथवा बंद करके। दोनों धर्मों के अत्यधिक फ़क़ीरों को इस अवस्था का कोई ज्ञान नहीं होता सैयिदुत्ताइफ़ा, उस्ताद अबुल क़ासिम बिन (पुत्र) मुहम्मद बिन (पुत्र) जुनेद का कथन है कि उन्होंने एक बार कहा 'तसव्वुफ़ एक क्षण के लिये बिना किसी शुश्रूषा के बैठने का नाम है।' शेखुल इस्लाम ने पूछा 'बिना शुश्रूषा का अर्थ क्या हुआ ?' उन्होंने बताया 'बिना खोज के प्राप्त करना और बिना देखे दर्शन पाना। दर्शन के लिये नेत्र का प्रयोग एक रोग है। अतः एक क्षण के लिए बिना किसी शुश्रूषा के बैठने का अर्थ यह है कि उस समय आलमे नासूत तथा आलमे मलकूत के मस्तिष्क में न आएं। तुरीय अथवा लाहूत शुद्ध अस्तित्व है और वह ब्रह्मांड की सभी वस्तुओं तथा इन तीनों अवस्थाओं को घेरे हुए है। (मजमउल बहैरन, पृ० ६०; प्रस्तावना भी देखिए)।

५३. रूहे आज़म—आत्मा दो प्रकार की होती है। साधारण (रूह) आत्मा (२) आत्माओं की आत्मा (अबुल अर्वाह)। दारा शि

कोह के

अनुसार भारतीय संत प्रथम को आत्मा और दूसरी को परमात्मा कहते हैं। जब ज़ाते बहत (शुद्ध अस्तित्व, ईश्वर) निर्धारित तथा बंदी हो जाता है चाहे वह शुद्धता और चाहे अशुद्धता द्वारा हो तो उसका ललित रूप रूह अथवा आत्मा कहलाता है तथा अललित रूप जस्द अथवा शरीर कहलाता है। जो अस्तित्व अनादि काल में निर्धारित हो गया उसे रूहे आज़म कहते हैं और वह तथा त्रिकाल गुणी सत्ता एक ही है (मजमउल बहैरन)।

५४. खलीफ़ा, उत्तराधिकारी—कुरान के अनुसार आदम ईश्वर के खलीफ़ा थे। जब परमेश्वर ने फ़रिश्तों से कहा कि मैं भूमि पर अपना खलीफ़ा (उत्तराधिकारी) नियुक्त करना चाहता हूँ" तो उन्होंने उत्तर दिया "क्या तू ऐसे को नियुक्त करेगा जो भ्रष्टाचार तथा रक्तपात करेगा ? हम तो तेरी उपासना करते ही हैं" उत्तर मिला "जो हम जानते हैं वह तुम नहीं जानते" सूफ़ी इन आयतों द्वारा मनुष्य के महत्त्व तथा उसके अत्यंत उत्कृष्ट स्थान तक पहुँच जाने का दावा करते हैं।

५५. मनुष्य को मुसलमानों के अनुसार सृष्टि की रचना का कारण बताया गया है और कहा जाता है कि मनुष्य द्वारा ही ईश्वर अपने आप को पहचनवाना चाहता था, अतः दैवी व्याख्या करनेवाला, वुजूद की कुंजी, ईजाद का क़लम आदि वाक्य मनुष्य के लिये कहे गए हैं।

५६. नफ़से कुल्ली अथवा नफ़से कामिल—ईश्वर की इच्छा।

५७. महर—वह धन जो पति अपने विवाह के समय पत्नी को देना स्वीकार करता है।

५८. मलकूत—देखो जबरूत।

५९. ज़िक्र, जपः—ईश्वर के नामों तथा उसकी प्रशंसा संबंधी वाक्यों का सुमिरन यह दो प्रकार का होता है। ज़िक्रे जली; जिसका उच्चारण ज़ोर ज़ोर से हो (२) ज़िक्रे खफ़ी जिसका उच्चारण मन में हो। सूफ़ियों के विभिन्न सिलसिलों में ज़िक्र के नियम अलग अलग हैं।

६०. आलमे मजाज़—भौतिक संसार।

६१. मुहम्मद साहब का नूर अथवा नूरे मुहम्मदी या हक़ीकत मुहम्मदी अथवा मुहम्मद साहब की वास्तविकता—मुसलमानों के अनुसार सृष्टि की रचना के पूर्व ईश्वर ने अपने नूर (ज्योति) से मुहम्मद साहब के नूर को पैदा किया। कहा जाता है कि सृष्टि की रचना के पूर्व ईश्वर ने मुहम्मद साहब के नूर को चार भागों में विभाजित किया (१) क़लम (२) लौह (तख्ती) (३)

अल्लाह का अर्श और चौथे के चार अन्य भाग किए (अ) हमलतुल अर्श अथवा आठ फरिश्ते जो ईश्वर के सिंहासन को सँभाले हैं (ब) कुर्सी अथवा अर्श का नीचे का भाग (स) फ़रिश्ते (द) इसे फिर चार भागों में बाँटा गया (क) सप्त आकाश (ख) ७ नरक तथा स्वर्ग (ग) भूमि (घ) इसके फिर चार भाग किए गए (१) आँख का प्रकाश (२) मस्तिष्क का प्रकाश (३) प्रेम का प्रकाश (४) अन्य सृष्टि।

६२. हज़रत सुलेमान—एक पैग़ंबर जिनका हवा पर भी राज्य बताया गया है। वे अपने ऐश्वर्य, योग्यता तथा बुद्धिमत्ता के लिये प्रसिद्ध बताए जाते हैं।

६३. हुदहुद--एक पक्षी जो क़ुरान के अनुसार हज़रत सुलेमान के पत्र सेबा की मलका को ले जाता था।

६४. सेबा—यमन का एक नगर।

६५. बुरेर— रसूल के एक सहचर।

६६. अलस्त—कुरान के अनुसार क़यामत में ईश्वर आत्माओं से पूछेगा—'अलस्तु बे रब्बेकुम्' (क्या मैं तुम्हारा ईश्वर नहीं हूँ ?)

६७. बला--उस समय वे उत्तर देंगी—बला (निःसंदेह तू ही है।)''

६८. क़यामत के दिन।

६९. यहाँ सूफियों से तात्पर्य है।

७०. यह संबोधन मुहम्मद साहब के लिये है।

७१. कुफ्र —वे बातें जो इस्लाम के विरुद्ध हों।

अध्याय २

१. उमर खत्ताब—मुसलमानों के दूसरे खलीफ़ा (मृत्यु ६४४ ई०)

२. ऐनुल क़ुज़ात—एक प्रसिद्ध सूफ़ी।

३. फ़िरऔन—मिस्र का बादशाह वलीद बिन मुसाब जो मूसा पैग़ंबर का समकालीन था।

४. हामान—फ़िरऔन का मंत्री।

५. क़ारूनः—एक बहुत बड़ा धनी तथा लोभी जो मूसा पैग़ंबर का बहुत बड़ा विरोधी था।

६. अबू जहेल - मुहम्मद साहब का एक चाचा जो अंतिम समय तक उनका विरोध करता रहा। मुहम्मद साहब से युद्ध करता हुआ बद्र के युद्ध में मार्च ६२४ ई० में मारा गया।

७. इबलीस—वह फ़रिश्ता जिसने आदम को ईश्वर के आदेशानुसार सिजदा नहीं किया और आदम तथा उनकी संतान को मार्गभ्रष्ट करने की प्रतिज्ञा की। सूफ़ी साहित्य में वह शैतान नहीं क्योंकि उसने ईश्वर की उपेक्षा नहीं की; और वह कर भी कैसे सकता था, क्योंकि कोई भी कार्य अल्लाह की इच्छा के बिना नहीं हो सकता। वह सर्वदा अल्लाह का ही सिजदा करता है और उसके आदेश पर भी किसी अन्य को सिजदा करने के लिये तैयार नहीं। अतः तसव्वुफ़ में इबलीस अल्लाह का बड़ा भक्त है।

८. साक़ी - मदिरा पिलानेवाला। प्रायः तरुण इस कार्य को करते थे।

९. शेख़ शिबली—बग़दाद के एक बहुत बड़े सूफ़ी। इनकी मृत्यु ३१ जुलाई ९४६ ई० को हुई।

१०. सलमा—एक स्त्री जो अपनी सुंदरता के लिये बड़ी प्रसिद्ध थी।

११. कुन—जब ईश्वर ने सृष्टि की रचना करने की इच्छा की तो उसने 'कुन' (हो जा) कहा और सब कुछ हो गया।

१२. मिज़राब—तार का बना हुआ एक प्रकार का नुकीला छल्ला जिससे सितार बजाया जाता है।

१३. इसका कारण यह है कि मुसलमानों के अनुसार मुहम्मद साहब के पश्चात् पिछली शरीअतों का अंत हो गया।

१४. नवाफ़िल - वे नमाज़ें जो अनिवार्य नहीं।

१५. वज़ीफ़े – विभिन्न कुरान के वाक्यों तथा ईश्वर के नामों आदि का जाप।

१६. दूरबाश—दूर रहो। बादशाहों की सवारी तथा राजसभाओं में इसका प्रयोग सर्वसाधारण को दूर हटाने के लिये किया जाता था।

१७. निसाब—वह कम से कम आय जिसपर धार्मिक कर लगते है।

१८. जब ईश्वर ने इबलीस की इच्छा के विरुद्ध आदम को पैदा करना निश्चित कर लिया तो उसने शपथ ली थी कि 'मैं मनुष्य को मार्गभ्रष्ट करता रहूँगा'।

१९. अमानत—ईश्वर का ज्ञान ऐसी अमानत (धरोहर) बताई गई है जिसका भार मनुष्य के अतिरिक्त कोई नहीं उठा सका। यह बात मनुष्य की बहुत बड़ी विशेषता बताई गई है।

२०. काफ़ पर्वत—कहा जाता है कि ये पर्वत संसार को घेरे हैं। मुसलमानों का विश्वास है कि इस पर्वत पर जिन्नात आदि निवास करते हैं।

२१. खाक़ानी—अफ़ज़लुद्दीन इब्राहीम (पुत्र) अली शिरवाना प्रसिद्ध फ़ारसी कवि जिनकी रचनाओं में तुहफ़तुल एराक़ीन तथा क़सीदे बड़े प्रसिद्ध हैं। उनकी मृत्यु ११८६ ई० अथवा ११९८ ई० में हुई।

२२. ज़कात—मुसलमानों के लिये उनकी कुछ निश्चित आय पर कर।

●

अध्याय ३

१. तहज्जुद—आधी रात्रि के बाद की नमाज़ें।

२. नवाफिल—ऐसी नमाज़ें आदि जो अनिवार्य न हों।

३. तकबीर—अल्लाहो अकबर कहना।

४. नीयत—नमाज़ में निर्धारित रकातें पढ़ने की प्रतिज्ञा।

५. ऐनुल यक़ीन—सूफ़ियों के अनुसार यक़ीन अथवा विश्वास की तीन श्रेणियाँ होती हैं। इल्मुल यक़ीन (२) ऐनुल यक़ीन (३) हक़ुल यक़ीन। धुआँ देखकर लोगों को इस बात का विश्वास हो जाता है कि वहाँ अग्नि है। यह इल्मुल यक़ीन है। कोई अपनी आँखों से आग देखता है। उसे पहले मनुष्य की अपेक्षा अधिक विश्वास हो जाता है। यह ऐनुल यक़ीन है। कोई अपना हाथ आग में डालता है और जल जाता है। उसे पहले दोनों व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक आग का विश्वास हो जाता है। यह हक्क़ुल यक़ीन है। पहला अनुमान द्वारा विश्वास, दूसरा निरीक्षण द्वारा विश्वास और तीसरा अनुभव द्वारा ज्ञान।

६. संप्रदाय—इस्लाम के विभिन्न ७२ संप्रदाय।

७. नक़्ल—वृत्तांत।

८. नस—क़ुरान।

९. अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास – मुहम्मद साहब के एक चाचा। इनका जन्म मुहम्मद साहब के मदीने पहुँचने के तीन वर्ष पूर्व (६१९ ई०में) हुआ। ये क़ुरान की व्याख्या करने में बड़े प्रसिद्ध थे। इनकी मृत्यु ६८७ ई० में हुई।

●

ग्रंथ सूची

[इस सूची में केवल वे ही पुस्तकें दी गई हैं जिनकी चर्चा भूमिका अथवा व्याख्या में की गई है। तसव्वुफ़ की समस्त सहायक पुस्तकों का उल्लेख जिनके आधार पर भूमिका तथा व्याख्या तैयार की गई है, देना संभव नहीं]

१—कलेमाते चंद, लेखक मीर अब्दुल वाहिद (फ़ारसी) हस्तलिखित अलीगढ़ ।

२—कुशफ़ुल महजूब, लेखक हुजवेरी (फ़ारसी) लाहौर प्रकाशन १९२३ ई० ।

३—खिलजी कालीन भारत, अनुवादक रिज़वी (हिंदी) अलीगढ़ १९५५ ई० ।

४—गुलज़ोर अबरार, लेखक ग़ौसी शत्तारी (फ़ारसी) हस्तलिखित ।

५—जवामे उल किलम, लेखक ख्वाजा गेसू दराज (फ़ारसी) इन्तिज़ामी प्रेस उस्मानगंज (१९३७–३८ ई०)

६—नफ़ायसुल मआसिर, लेखक मीर अलाउद्दौला मीर यहिया क़ज़वीनी (फारसी) हस्तलिखित अलीगढ़ ।

७—फ़वायदुल फ़वाद, लेखक अमीर हसन (फ़ारसी) फ़खसलमताबे १९५५–५६ ई० ।

८—बहरुलहयात, लेखक शेख मुहम्मद ग़ौस (फ़ारसी) देहली १८९० ई० ।

९—मआसेरुल केराम, लेखक मीरगुलाम अली आज़ाद बिलग्रामी (फ़ारसी) आगरा १८८० ई० ।

१०—मकतूबाते शरफ़ुद्दीन यहिया मुनेरी, लेखक यहिया मुनेरी कुतुबखान-ए-इस्लामी पंजाब ।

११—मजमउल बहरैन, लेखक दारा शिकोह (फ़ारसी) कलकत्ता ।

१२—मुंतखबुत्तवारीख, लेखक मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी (फ़ारसी) कलकत्ता १८६४–६६ ई० ।

१३—रिसालये कुशेरिया, लेखक कुशेरी (अरबी) मिश्र में प्रकाशित १६२३ ई० ।

१४—सब-ए-सनाबिल, लेखक मीर अब्दुल वाहिद (फ़ारसी) हस्तलिखित अलीगढ़ ।

१५—हस्ते शुबहात, लेखक मीर अब्दुल वाहिद (फ़ारसी) हस्त लिखित अलीगढ़ ।

१६—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लेखक डा० रामकुमार वर्मा (हिंदी) प्रयाग १६४८ ।